दान तथा अन्य कहानियाँ



ऋषभचरण जैन

ऋषभचरण जैन एवम् सन्तति

दान तथा अन्य कहानियाँ

ऋषभचरण जैन



प्रथम संस्करण	१९८५
मूल्य	३०.००
प्रकाशक	दिग्दर्शन चरण जैन ऋषभचरण जैन एवम् सन्तति २१ दरियागंज, नई दिल्ली-२ ११ गार्डन रीच, कुलड़ी–मसूरी
मुद्रक	ग्रन्थशिल्पी, नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२

Daan Tatha Anya Kahaniyan by Rishabh Charan Jain
Price. Rs. 30.00

प्रकाशकीय

ऋषभचरणजी की कहानियाँ लम्बे अर्से से अप्राप्य थीं। अन्य झंझटों में फँसे रहने के कारण इस ओर ध्यान नहीं दे पाये, जिसका दुष्परिणाम यह हुआ कि कहानीकार के रूप में उनका नाम विस्मृत होने लगा। कई विश्वविद्यालयों में उन पर शोध कार्य करने वाले शोध-कर्त्ताओं ने इस प्रमाद की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया। उस दोष का परिमार्जन करने की दिशा में यह प्रथम प्रयास है। चार खण्डों में उनकी सभी कहानियाँ प्रकाशित करने की योजना है, जिसकी यह प्रथम कड़ी है।

आशा है पाठक और शोधार्थी इनका पूरा लाभ उठावेंगे।

—**दिग्दर्शनचरण जैन**

२१ दरियागंज
नई दिल्ली
मार्च १९८५

क्रम

दान

१

चन्दूलाल, रामचन्द, ज्योतिप्रसाद और हुकूमतराय चार आदमियों के नाम हैं।

चन्दूलाल एक घड़ी की दुकान में बीस रुपए का नौकर है। स्त्री है, एक बच्ची है। गुज़र-बसर मुश्किल से होती है। कोट बरसों में बदलता है, जूता टुकड़े-टुकड़े हो जाता है, टोपी का खर्च बचाने के लिए नंगे-सिर नौकरी पर जाता है। रामचन्द; साधारण गृहस्थ हैं। जाति के वैश्य हैं। कृष्ण के सच्चे भक्त हैं। गीता का नियमित पाठ करते और माथे पर चन्दन पोतकर घर से बाहर निकलते हैं। अनाज की मण्डी में दलाली करते हैं। कृष्ण की कृपा से खासी प्राप्ति हो जाती है। घर के लोग खुशहाल हैं। ज्योतिप्रसाद, किसी अर्द्ध-सरकारी दफ्तर में हेड क्लर्क हैं। वेतन तीन सौ रुपया है। कपड़े रेशमी पहनते हैं। टोपी फेल्ट लगाते हैं। 'अबदुल्ला' का सिगरेट पीते हैं। अक्सर इण्टर में और कभी-कभी सेकिंड क्लास में सफ़र करते और बीसों रुपया अपने और बच्चों के स्वास्थ्य की खोज में डाक्टर-वैद्यों को अर्पण करते हैं। हुकूमतराय, मोटी तोंदवाले, क्षत्रिय के अपभ्रंश खत्री हैं। छज्जेदार पगड़ी लगाते हैं। मक्खन-जीन का कोट या रफ़ल का अँगरखा पहनते हैं। दोनों हाथों की उँगलियों में कई-कई अँगूठियाँ भरे रहते हैं। चूड़ीदार पायजामा पहनते हैं। रेशमी कमरबंद हमेशा लटकता दिखाई देता है, और सलीम-शाही जूते या पंप-शू धारण करते हैं। अक्सर मोज़ों का इस्तेमाल भी होता है। आँखों में सुर्मा और मुँह में पान चौबीस

रमा रहता है। राय साहब की पदवी प्राप्त कर चुके हैं, और '...साहब' की जगह '...बहादुर' बनने की मन में बड़ी लालसा है।

एक दिन ये चारों आदमी शहर के भिन्न-भिन्न भागों से अपने-अपने घर की तरफ चले।

२

रमजू एक भिखारी का नाम है। फटी-सी, सर्व-परिचित गूदड़ी ओढ़े सड़क के किनारे बैठा है। हाथ-पैर काँप रहे हैं, या कँपाए जा रहे हैं। शरीर जगह-जगह से ज़ख्मी हो गया है। मुँह पर घोर दीनता का भाव है। नीचे का होंठ फैल गया है। दाँत निकले पड़ते हैं।

चन्दूलाल सामने से निकला, तो रमजू होंठ फैलाकर, दाँत निकालकर चिल्ला उठा—'बाबा, एक पैसा !...तेरे बच्चों की खैर...!'

इस आर्त स्वर ने या इस शुभ कामना ने चन्दूलाल के पैर बाँध दिए। जेब में एक ही पैसा था। सोचा था, लड़की के लिए दाल-सेब लेते चलेंगे। अब वह इरादा बदल गया, और पैसा जेब में न रह सका। उसने ज़ेब में हाथ डाला, और पैसा रमजू की तरफ फेंक दिया।

कँपकँपी क्षण-भर को रुक गई, होंठ सिकुड़ गए, दाँत भीतर चले गए। पैसा उठाकर माथे से लगाया गया, और कृतज्ञ कण्ठ से रमजू ने कहा—'दाता तेरा भला करेगा।'

चन्दूलाल आगे बढ़ गया।

'छन्न' से आवाज हुई, और इस पैसे ने रमजू की थैली में पहुँच कर अपने जाति-भाइयों से मिलने की सूचना दी।

३

यह आवाज विलीन हुई थी कि रामचन्द आ पहुँचे। माथे पर अब तक चन्दन पुता हुआ था। मुँह से कृष्ण का नाम निकल रहा था, और मन अनाज की मण्डी में घूम रहा था।

चन्दू का भाव झट बदल गया। होंठ फैल गए, निकल आए, शरीर काँपने लगा, और स्वर में वही कातरता आ फूट निकली। हाथ फैलाकर चीख पड़ा—'बाबा, एक पैसा !...तेरे बच्चों की खैर...!'

रामचन्द के कृष्ण-नाम और अनाज की मंडी के चिंतन में कोई व्याघात

न हुआ, और वह बिना उधर देखे आगे बढ़ गया।

रमजू ने सतृष्ण नेत्रों से देखा, और धीरे-से कहा—'दाता, तेरा भला करेगा!'

यह वाक्य अभ्यास-वश मुँह से निकल गया था, या सचमुच उसकी ऐसी इच्छा थी, इसे हम नहीं जानते।

रामचन्द थोड़ी दूर आगे बढ़ा था कि किसी ने रोक दिया। नज़र उठाकर देखा, तो एक जटाधारी संन्यासी! रामचन्द ने अवाक् होकर उन्हें ताका, और फिर दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

संन्यासी कर्कश स्वर में बोला—'बोल, साधू की इच्छा पूरी करेगा?'

रामचन्द सहमकर बोला—'कहिये क्या है महाराज?'

संन्यासी ने इधर-उधर देखा। सड़क पर कोई न था फिर वैसे ही कर्कश स्वर में बोला—'तेरे मुँह में कृष्ण का नाम है। संन्यासी की इच्छा तू ही पूरी कर! तेरा कल्याण होगा।'

रामचन्द हाथ जोड़कर बोला—'कहिए न महाराज!'

'संन्यासी के भंडारे के लिए तुरन्त सवा रुपया दे।' संन्यासी ने आँखें निकालकर कहा—'तेरी जेब में है, देख, अभी निकाल; कल्याण होगा।'

रामचन्द क्षण-भर को ठिठका, तो संन्यासी ने ज़मीन पर पैर पटककर कहा—'नहीं देता? अच्छा ले, जाता हूँ, याद रख, तेरा सर्वनाश हो जायेगा?'

रामचन्द एड़ी से चोटी तक लरज जाता है, और सवा रुपया का मोह त्याग देता है।

सवा रुपया लेकर संन्यासी लाल आँखें किए आगे बढ़ता है।

४

रमजू अपनी टेर शुरू करता है—'बाबा, एक पैसा!…तेरे बच्चों की खैर…'

अब ज्योतिप्रसाद आए। फ़ेल्ट तिरछी हो गई है। रेशमी कोट के बटन खुल गए हैं। कमीज झक-झक कर रही है। पतलून की 'क्रीज़' कुछ बिगड़ गई है। बूट अभी-अभी रूमाल से साफ़ किए गए हैं। सिगरेट से धुआँ निकल रहा है।

रमजू की टेर कान में पड़ती है, तो थम जाते हैं। क्षण-भर विचित्र दृष्टि से इस दीन भिखारी की तरफ़ ताकते रहते हैं, फिर कहते हैं—'अरे, तू क्यों भीख माँगता है ?'

रमजू उसी तरह दाँत निकालकर कहता है—'बाबा पेट···!'

'पेट ?···पेट किसके नहीं है ?—हमारे भी तो है। हम तो भीख नहीं माँगते ! तू जो मक्कारी करके यहाँ अपाहिज बना बैठा है, इससे क्या फ़ायदा ? अरे, उठकर हाथ-पाँव चला, और कमाकर खा, यह तो परले सिरे का कमीनापन है ! समझा ? तुम लोगों ने इस मुल्क की हालत बहुत ख़राब कर रक्खी है !'

रमजू मुँह बाए सब सुनता रहा कि अन्त में कुछ मिलेगा। पर जब लेक्चर और विरक्तिपूर्ण दृष्टि के अतिरिक्त कुछ न मिला, और बाबू साहब चल दिए, तो उसकी निराशा का ठिकाना न रहा। तब भी उसके मुँह से निकला—'दाता तेरा भला करेगा !'

ज्योतिप्रसाद आगे बढ़े। सामने से वही जटाजूटधारी संन्यासी आ रहा था। पुष्ट शरीर, चेहरा खिला हुआ, गेरुआ वसन, और लाल-लाल आँखें ! देखते ही ज्योतिप्रसाद की त्यौरी चढ़ गई। आप-ही-आप बोले—'एक यह और आया पाजी !'

संन्यासी ने तीव्र नेत्रों से ज्योतिप्रसाद पर दृष्टिपात किया, पर त्यौरी चढ़ी देखी, तो दृष्टि की तीव्रता का लोप हो गया। पास आकर नर्मी से बोला—'बाबू···!'

ज्योतिप्रसाद ने कड़ककर कहा—'क्या है बे ?'

संन्यासी की घिग्घी बँध गई। लड़खड़ाती जीभ से बोला—'बाबू, भूखा हूँ।'

ज्योतिप्रसाद चिल्ला उठे—'भूखा है, तो साले, क्या मुझे खायेगा ?—जाकर कुएँ में डूब मर !'

और वह आगे बढ़ गए। संन्यासी भी अपना-सा मुँह लिए चल दिया।

ज्योतिप्रसाद चले। अपने इस निरर्थक क्रोध पर मन कुछ विषण्ण हो गया। संन्यासी की स्थिति पर कुछ दया भी आई; और उसी वक्त

भिखारियों के पक्ष में उनके मस्तिष्क ने कई मौलिक युक्तियों की सृष्टि कर डाली।

घर पहुँचते-पहुँचते वह क्रोध भी, विषण्णता भी और वे युक्तियाँ भी, सब-कुछ लुप्त हो चुका था।

बैठक में तीन-चार सज्जन उपस्थित थे। सबके शरीर पर खद्दर के वस्त्र और चेहरों पर नई तरह के भाव थे। सब बैठक में बैठे आपस में हँसी-दिल्लगी कर रहे थे। ज्योतिप्रसाद पहुँचे कि सबका भाव बदल गया; जैसे सूरज के आगे बादल आ गया, और खिली धूप की जगह पलक मारते छाया हो गई।

थोड़ा-बहुत परिचय तो सभी से था, पर जगन्नाथ घनिष्ठ थे। हँसकर बोले—'जनाब की इन्तज़ारी में दरे-दौलत पर हाज़िर हैं!'

ज्योतिप्रसाद आसीन होकर बोले—'कहिए, क्या हुक्म है?'

जगन्नाथ दाँत निकालकर बोले—'इस महीने की तनख्वाह छीनने आए हैं।'

ज्योतिप्रसाद सहमकर बोले—'क्या?'

'हाँ जी, बाबू बिहारीलाल, अब बोलो न।' जगन्नाथ ने अपने निकटस्थ साथी से कहा।

बिहारीलाल ने गाँधी-कैप सरकाकर कई बार मुँह का भाव बदला, फिर ऊपर का होंठ नाक की नोंक से छुआया, और कुछ बहियाँ, रसीद-बुकें और कुछ हैंड-बिल खद्दर के बस्ते से निकालकर मेज़ पर पटक दिए।

एक हैंड-बिल ज्योतिप्रसाद के हाथ में दे दिया गया।

शीर्षक था—'भयङ्कर आघात!' फिर छोटी सुर्खी में था—'हिन्दू-धर्म खतरे में!' इसके नीचे और छोटे टाइप में छपा था—'लाखों अनाथों की रक्षा का आयोजन—हिंदुओं से अपील।'

देव-नागरी का निम्नलिखित पद्य देकर बात शुरू की गई थी—

'हिन्दू-जाती आज जाती है रसातल को सुनो;
लाखों बच्चे भ्रष्ट होते, उनकी कहानी को सुनो।'

फिर उस लम्बे हैंड-बिल में बहुत-सी बातें लिखी हुई थीं। उपर्युक्त पद्य का माधुर्य लूटकर और हैंड-बिल के घोर अशुद्ध वक्तव्य को समाप्त

करके, ज्योतिप्रसाद बोले—'स्कीम तो अच्छी है!'

जितनी देर में हैंड-बिल खत्म हुआ, सबकी नज़र उनके चेहरे पर जमी रही। अब यह बात सुनकर जैसे सब-के-सब पानी का छींटा खाकर जाग उठे, और हर्षित होकर एक साथ बोले—'जी, यह तो आशा ही थी आपसे···।'

ज्योतिप्रसाद ने कोशिश करके मुँह की मलिनता छिपाई और कहा, 'आप लोगों का साहस प्रशंसनीय है।'

बिहारीलाल बोले—'जी, देखिए, आज लाखों की तादाद में अनाथ बच्चे विधर्मी हो रहे हैं···। (ज्योतिप्रसाद ने अतिशयोक्ति पर ध्यान न दिया, और मुँह की मलिनता छिपाने के लिए सिर हिलाकर समर्थन किया।) ईसाई और मुसलमान इन बच्चों की खोज में मुँह-बाए फिरते हैं, और अन्त में उन्हीं की मदद से हमारे पवित्र धर्म पर कुठाराघात करते हैं। अगर हमारे पूर्वज इस बात का खयाल रखते, तो आज भारत में विधर्मियों की इतनी संख्या कभी न होती। (मलिनता का भाव छिपाने में कुछ-कुछ सफल हुए हैं, इसलिए ज्योतिप्रसाद बराबर समर्थन-सूचक सिर हिलाए जा रहे हैं।) आज हमारे अनाथ बच्चों की जैसी दुर्दशा हो रही है, उसे देखकर किस हिन्दू की छाती फट न जाएगी? किसका हृदय हाहाकार न कर उठेगा? किसका···'

बिहारीलाल ने कब अपनी स्पीच समाप्त की, ज्योतिप्रसाद को इसका होश नहीं। जैसे रेल ठहरने पर नींद खुल जाती है, वैसे ही बिहारीलाल की स्पीच का प्रवाह रुकने पर उन्हें होश आ गया। जगन्नाथ हँसते हुए कह रहे थे—'कहिए, कुछ समझे?'

ज्योतिप्रसाद सिटपिटाकर बोले—'जी हाँ, ठीक है—बड़ी अच्छी बात है!'

बिहारीलाल ने 'डॉनेशन-बुक' खोलकर उनके आगे रख दी, पेंसिल हाथ में थमा दी, और खुद रसीद-बुक लेकर फाउंटेन-पेन खोलने लगे।

ज्योतिप्रसाद बोले—'क्या हुक्म है?'

बिहारीलाल ने गिड़गिड़ाकर कहा—'अजी वाह, मैं क्या हुक्म चलाऊँगा, मैं तो आपका सेवक हूँ!'

जगन्नाथ ने हँसकर बेतकल्लुफ़ी से कहा—'आपके पास 'अपील' करने से हमारा उद्देश्य यह है कि कम-से-कम आपकी एक महीने की तनख्वाह हड़प कर जाएँ।'

ज्योतिप्रसाद के मुख पर जैसे संकट का भाव उदित हुआ, उसे देख कर आपको दया आती और अनाथाश्रम के 'डेपुटेशन' पर हँसी छूटती।

ज्योतिप्रसाद ने पन्ने पलटकर 'डॉनेशन-बुक' का निरीक्षण किया, फिर थोड़ी देर सोचते रहे; और फिर कलेजे पर पत्थर रखकर…लिख दिया।

जगन्नाथ ने खूब हाथ-पैर मारे, पर पच्चीस रुपये से एक कौड़ी ज्यादा न लिखी गई।

५

दो बार खाली जा चुके थे, इसलिए रमजू ने टेर के स्वर में वृद्धि की—'बाबा, एक पैसा…तेरे बच्चों की खैर!'

रायसाहब हुकूमतराय आते नज़र पड़े। छज्जेदार पगड़ी की बहार देखने काबिल थी। रफल का अंगरखा उड़कर भागा जाता था। चूड़ीदार पायजामा खूब कसा हुआ था। सलीम-शाही जूते और मोज़े अलग फबन दिखा रहे थे।

रमजू ने इरादा कर लिया कि दोनों बैरंग दाताओं की कसर इस एक से निकालूँगा। दूर से देखा, और चिल्लाने लगा—'बाबा, तेरे बच्चों की खैर…कुछ देना…!'

इस बार टेर में परिवर्तन कर दिया, क्योंकि एक पैसे से ज्यादा की आशा और अभिलाषा थी।

हुकूमतराय एक-एक कदम रखते आगे बढ़े। माथे की शिकन से मालूम होता था कि किसी गहरी चिन्ता में हैं। ऐसा जान पड़ता था कि किसी ने उन्हें छेड़ा, तो बरस ही पड़ेंगे। पर रमजू को इतनी अक्ल होती, तो भीख क्यों माँगता? उसे तो बस एक पैसे ज्याहा की धुन थी। उनका एक-एक कदम पड़ता था, और उसके दिल पर जैसे चोट पड़ती थी। हरएक कदम पर या हरएक चोट पर आवाज भी तेज होती जाती थी।

सामने आने में तीन कदम की देर थी। रमज़ू गला फाड़कर चिल्लाया—'बाबा, तेरे बच्चों की खैर···!'

दो कदम रह गए। रमजू आगे सरक गया। आवाज फिर निकली—'बाबा, तेरे बच्चों···।'

एक ही कदम रह गया था। रमजू की आँखें निकल आईं। पूरा जोर लगाकर बोला—'बाबा, तेरे···।'

हुकूमतराय ठीक सामने आ गए। उड़ती नज़र से एक बार चीखते हुए भिखारी को देखा। विचार श्रृंखला में बुरी तरह बाधा डालने वाले इस नाचीज पर क्रोध तो बहुत आया, पर पी गए।

वह पिया हुआ क्रोध मानो अभागे भिखारी ने बाहर उगलवा लिया। क्या किया? जब हुकूमतराय ने आगे कदम रक्खा, तो आवेग में भरकर उसने उनका पैर पकड़ लिया। मुँह से बोला—'बाबा, तेरे···!'

हुकूमतराय गिरते-गिरते बचे। वह पिया हुआ क्रोध वापस आ गया, और सारा शरीर आवेश के कारण एकबारगी झनझना उठा। उस नाचीज की इतनी हिम्मत! पहले तो उस कीमती विचार-वाटिका का सत्यानाश मार दिया, फिर···फिर ऐसे अपमान के साथ संबोधन करता है! और पाजी की यह हिम्मत कि पैर पकड़ लिया···।

यह सब विचार भयानक वेग के साथ पलक मारते दिमाग में घूम गए। हुकूमतराय की आँखों से चिनगारियाँ छूटने लगीं। आँखें काढ़कर और दाँत पीसकर उन्होंने पीठ फेरी। रमजू आशा और भयपूर्ण नेत्रों से ताक रहा था। पर उनका तो विवेक नष्ट हो चुका था; उसके कातर भाव को लक्ष्य करने लायक भावुकता उनमें कहाँ से आती? शरीर में जैसे ज्वाला भर गई! उन्होंने पूरे वेग से एक लात रमजू पर चलाई, और पास से एक पत्थर का टुकड़ा उठाकर उसके सिर पर दे मारा।

रमजू की पहली चीख हवा में विलीन हो गई! फिर वह दहाड़ मारकर रो उठा। सिर से खून की मोरी-सी बह निकली। लात की चोट भी पूरी बैठी थी।

हाथ-पैर का काम खत्म हुआ, तो मुँह का शुरू हुआ। गन्दी-से-गन्दी गालियों की बौछार-सी होने लगी।

रमजू घाव और मार की पीड़ा से चीखता था, रोता था और 'हाय-हाय करता था। आस-पास इतनी भीड़ इकट्ठी हो गई थी, पर कोई माई का लाल उसका पक्ष लेकर हुकूमतराय से जवाब तलब करनेवाला न था। जो लोग रायसाहब के परिचित थे, वे उनसे प्रश्न कर रहे थे, उन्हें शान्त कर रहे थे, और उनके क्रोध का अतिरंजित कारण जानकर असहाय रमजू पर रोष प्रदर्शन कर रहे थे।

जब ज्यादा भीड़ इकट्ठी होती देखी, और क्रोध का खासा स्खलन हो चुका, तो रायसाहब आगे बढ़े।

बिलखते हुए रमजू की तरफ किसी का ध्यान न था। सब-के-सब आश्चर्य की मूर्ति बने, सहमे-से, आतंक-पूर्ण रायसाहब को निहार रहे थे !

रामचन्द से सवा रुपया ऐंठनेवाला और ज्योतिप्रसाद की झिड़की खाने वाला संन्यासी भी चुपचाप भीड़ में खड़ा था ?

घर थोड़ी दूर रह गया था, किसी ने आवाज दी 'रायसाहेब…!'

रायसाहब ने पीछे फिरकर देखा—अनाथाश्रम का डेपुटेशन ! आवाज देनेवाला जगन्नाथ था। रायसाहब से भी उसका साधारण परिचय था। उसी बल के आधार पर उसने आवाज दी थी।

रायसाहब थम गए। डेपुटेशन के लोग गर्दन झुकाए, खद्दर के कुरतों की सीवन को टटोलते हुए आगे बढ़े। एक के हाथ में हैंडबिल थे, दूसरे ने रसीदबुकें ले रखी थीं, तीसरे के पास थैली और डॉनेशन-बुक थी। जगन्नाथ खाली हाथ था।

रङ्ग-ढंग देखकर रायसाहब ने बहुत-कुछ अनुमान कर लिया। गुस्सा अभी पूरी तरह शांत नहीं हुआ था। यह नए हमले की तैयारी देखी, तो त्यौरी में बल पड़ गए। फिर भी थमे रहे।

डेपुटेशन पास आया। सब ने हाथ जोड़कर अभिवादन किया। माथे की त्यौरी नष्ट किये बिना ही रायसाहब ने सिर हिलाकर अभिवादन का उत्तर दिया। डेपुटेशन कुछ शंकित हुआ।

जगन्नाथ ने कहा—'कहिए, आपका मिजाज तो अच्छा है ?'

रायसाहब कुढ़कर बोले—'जी हाँ; आप इधर कहाँ चले ?'

जगन्नाथ ने देखा—रंग बेढंग है ! नरमी की नदी में डूब कर बोला—'आप ही के दौलतखाने पर कदम-बोसी के लिए हाजिर होनेवाला था ।'

रायसाहब तब भी बे-तकुल्लुकी पर न आए। घुड़ककर बोले—'मेरे···? क्यों, मुझसे क्या काम था ?'

जगन्नाथ बोला—'आप तशरीफ ले चलिए, वहीं चलकर बताऊँगा ।'

रायसाहब अनखाकर बोले—'आप कहते चलिए; घर पर तो मुझे मरने की भी फुर्सत नहीं रहती ।'

जगन्नाथ ने इस अपमान को कतई न गरदानकर कहा—'अच्छा, तो बात यह है···।'

उसने बिहारीलाल की तरफ देखा। एक हैंड-बिल रायसाहब की तरफ बढ़ा दिया गया ।

हैंडबिल उन्होंने न लिया। मोटी सुर्खी पर दूर से ही नजर डालकर बोले—'क्या है यह ? जबानी फर्माइए···मुख्तसिर···।'

जगन्नाथ ने बिहारीलाल की तरफ देखा, और कहा—'जी, लीजिए, आपसे परिचय करा दूँ। आपका नाम··· .'

रायसाहब टोककर बोले—'मतलब की बात कहिए न, मुझे देर हो रही है !'

'बिहारीलाल के मुँह पर हवाइयाँ उड़ने लगीं ।'

जगन्नाथ बोला—'जी, एक अनाथाश्रम की स्कीम है। आप जानते हैं, आजकल लाखों बालक···।'

रायसाहब जल उठे। पहले कोई कड़ा उत्तर देना चाहते थे, फिर जगन्नाथ का मुँह देखकर रह गये। बोले—'क्या चन्दे के लिए आए हैं···?'

'जी, आपकी सम्मति भी लेनी थी ! और चन्दा तो आप ही जैसे···।'

'आप फिर किसी वक्त मिलें। जो मुनासिब सलाह मैं दे सकता हूँ, दूँगा !' कहकर रायसाहब एकदम चल दिए। डेपुटेशन भी वापस फिरा।

अब बिहारीलाल ने गम्भीरता की चादर उतार फेंकी, और हँसकर कहा—'साला है बड़ा घाघ !'

अब सबका रूप अकस्मात् बदल गया, और पाँच मिनट बाद दूसरे शिकार की खोज होने लगी।

उधर रायसाहब हुकूमतराय घर पहुँचे। खूब ठाठ का घर था। घर क्या महल समझो। देखते ही नौकर-चाकर दौड़ पड़े। जूता उतारते हुए एक नौकर ने कहा—'सरकार, कमिश्नर साहब का चपरासी आया था !'

'क्यों ?' कहकर रायसाहब एक-साथ उछल पड़े।

'एक चिट्ठी दे गया है; दफ्तर में रखी है !'

रायसाहब नंगे-पाँव उधर दौड़े। चिट्ठी खोलना दुश्वार हो गया। खूबसूरत लिफाफे में मोटे कागज पर छपा हुआ एक सर्कुलरनुमा पत्र था। नीचे चीफ-कमिश्नर के हस्ताक्षर थे।

था क्या ? रायसराय ने बादशाह के अच्छे होने की खुशी में 'थैंक्स-गिविंग-फंड' खोला है। उसी की सूचना इस चिट्ठी द्वारा रायसाहब हुकूमतराय को दी गई है।

इस छपी हुई चिट्ठी को रायबहादुरी के स्टेशन का टिकट समझकर रायसाहब उसी वक्त एक हजार रुपए का चैक 'थैंक्स-गिविंग-फंड' में भेजने की व्यवस्था करने लगे !

भय

किसी भेदिये ने भेद दिया, और दुश्मनों ने दुश्मनी निकाली।

अभी चार वर्ष रौने को हुए थे, पर जरा-सी तकरार हुई, कि मालिक फौज में भर्ती होकर विलायत चला गया। तरुण देवर अभी कुँआरा था। मालिक होता, तो इस साल मनभरी अपनी छोटी बहिन को भी इसी घर में ले आती, परन्तु भाई के पीछे न्यादर ने ब्याह करने से एकदम इंकार कर दिया।

दीवान अपनी याद में एक छोटा बच्चा मनभरी की गोद में छोड़ गया था। उसकी नजर में वही 'लाल' था और वही कुँअर। देवर-भाभी की आँखों का तारा दुलारा वहीं बालक था। भैंसें दुहकर, खेत जोतकर, सिल्ला बिनकर, दांग चलाकर दोनों सुख से दिन बिताते थे, और लड़ाई खत्म होने की बाट देखते थे। फ्रांस से दीवान की चिट्ठियाँ अकसर आया करती थीं।

किसी भेदिए ने भेद दिया और दुश्मनों ने दुश्मनी निकाली।

देवर उस दिन कालका जी के मेले में गया था, मनभरी घर में अकेली थी। कुआर खत्म हो रहा था, रात जड़ियाने लगी थी, मनभरी ने तीनों भैंसों का दूध काढ़कर उन्हें बाड़े में बन्द किया, भीतर से आगल लगाया, और इधर-उधर देख-भालकर, छौने को गले में लगाकर सो रही।

चौके से आगे बरामदा था, और उसके पीछे कोठा। मनभरी ने बरामदे में खाट बिछाई थी। चाँद हँस रहा था। रात में मस्ती थी। दिन-भर जी-तोड़ मेहनत की थी। पड़ते ही उसे नींद आ गई।

किसी आवाज से उसकी नींद टूटी। दिन-भर की बातें ताजी थीं,

आँखों में पूरी नींद धँसी भी नहीं थी—जैसे सोये ज्यादा देर नहीं हुई। उसने आँख फाड़कर देखा—चौक में चाँदनी चिटक रही है। कहीं कोई नहीं। क्यों उसकी नींद टूटी ?

अकस्मात् उस अँधेरे कोने में कोई छिपा हुआ दिखाई दिया, उधर उसमें भी—छत पर भी कोई है ! मनभरी का दिल जोर से धड़क उठा, उसने ऊपर का वस्त्र उतारकर फेंक दिया, और अस्त-व्यस्त धोती को क्रम में किया।

तब छत के आदमी चौक में कूदे, और कोने वाले उनमें मिल गए। सब पाँच थे, पर मनभरी को दर्जनों दिखाई दिए। उसने एक हल्की चीख मारी, और दौड़कर कोठे में घुस गई। साँकल उसने भीतर से बन्द कर ली।

जी उछला जा रहा था। पहले उसे सम्हाला, फिर चिल्लाकर बोली—'खबरदार !'

घर उसका गाँव के पिछले पासे था। फिर कोठे में बन्द थी। अगर जी खोलकर चिल्लाती, तो भी कौन सुनने वाला था।

आततायी लोग उसकी खाट के पास आ गए। दो ज़रा पीछे ठिठक गए। तीन आगे वालों ने कुछ फुसफुसाया। इतने में 'खबरदार !' सुनकर तीनों एक कदम पीछे हट गए। किसी ने कहा—'कोठे में घुस गई !'

पीछे वालों में से एक ने कड़े स्वर में कुछ कहा। फिर एक क्षण के लिए मौत का सन्नाटा !

मनभरी की हिम्मत बँध-सी गई थी। उसने फिर कड़ककर कहा—'कौन है।'

आगे वालों में से एक बोला—'ताली दे दो।'

'ताली कहाँ हैं ? इस झोंपड़ी में रक्खा क्या है ?'

पीछे से फिर किसी का कुछ आदेश पाकर उसने कहा—

'हमें सब-कुछ मालूम है; ताली दे दो।'

'यहाँ कुछ नहीं है, जाइये।'

'बकस कहाँ है ?'

'बकस ?—बकस तो यह है, मेरे पास।'

'कोठा खोलकर बाहर आ जाओ, हम देख लेंगे।'

'यह नहीं होगा।'

'कैसे नहीं होगा।'

मनभरी ने जवाब भी न दिया था, कि पीछे वालों में से एक आगे बढ़ा, और किवाड़ों पर ज़ोर से लात मारकर गर्जा— 'खोल किवाड़ !'

मनभरी का दिल डूब-सा गया। पर किवाड़ हिले तक नहीं।

दीवान ने बड़े शौक से जोड़ियाँ चढ़वाई थीं, गांव-भर में जिनका सानी नहीं था। साँकल और आगल भीतर से बन्द था, तो भी मनभरी ने किवाड़ों पर सारा जोर लगा दिया।

फिर लात और फिर 'खोल किवाड़ !' पर किवाड़ फिर भी न खुले।

सहसा बच्चा रो उठा, और साथ ही किसी ने कहा—'इस बच्चे को मार डाला जाएगा।'

कहने वाला उन दो में से था, जो पीछे रह गए थे।

किसी ने जैसे मनभरी की छाती में घूँसा मार दिया। उसने तिल-मिलाकर इस गर्जना की सार्थकता का अनुभव किया।

पहले के तीन में से एक ने कहा—'बाहर निकल आ, ताली सौंप दे !'

मनभरी ने थमकर कहा—'क्या उसे मार डालोगे ?'

दो ने कहा—'ज़रूर ! ज़रूर !'

एक ने कहा—'देखता क्या है—भींच दे टेटुआ !'

मनभरी की आत्मा पर चाबुक का-सा वार हुआ। बच्चे की चिल्ला-हट, उस नन्हें-से शिशु का तड़पकर मरना, अबोध जीव का मिनट-भर में ही मुर्दा बन जाना, उसके मन की आँख के आगे नाच गया ! अज्ञात भाव से उसके हाथ आगल पर पहुँच गये। आगल हट गया, साँकल खुल गई, किवाड़ खुलने ही वाले थे, कि पाँचों आततायियों की सूरत भीषण रूप धारण करके उसके सम्मुख आ गई। इज्जत का सवाल था ! अकेली औरत क्या करेगी ! बेटा बड़ा या इज्जत बड़ी ?

उसने सबसे पहले साँकल बन्द की, आगल लगाया, तब हाँकती हुई सोचने लगी।

इतने में फिर किसी ने कहा—

'हमें वक़्त नहीं है। निकल बाहर !'

उसका जवाब न पाकर फिर उन्हीं दो में से एक (नायक) ने कहा—'देखता क्या है बे, घोंट दे गला, और फिर तोड़ दे किवाड़ !'

मनभरी का दिल खट-खट बजने लगा। शरीर की एक-एक नस काँपने लगी। हाथ फिर साँकल की तरफ चला। पर वह भीषण रूप फिर सामने आ गये !

उस पहले आदमी ने फिर कहा—'ताली दे दे, बाहर आ जा···'

पर नायक ने डपटकर चुप कर दिया। बच्चा चीख उठा।

'ठहरो !' खूब जोर लगाकर मनभरी चिल्लाई।

धन-माल का उसे लोभ नहीं। वह बड़ी खुशी से सब कुछ सौंप सकती है। वे घर से बाहर चले जायें, तो छत के ऊपर से वह सब गहना-रुपया फेंक देगी। उसे अपनी इज्जत का सवाल है।

'इसकी फिक्र न करो···' उस पहले ने फुर्ती से कहना शुरू किया। पर नायक ने फिर डपट दिया।

नायक ही बोला। उसके स्वर में भीषणता थी, और पाशविकता थी।

'हम बहस करने नहीं आए। तुझे अपनी दुर्दशा नहीं मन्जूर, तो किवाड़ खोल। हममें किवाड़ खोलने की ताकत है। हम खुद खोलेंगे, और जो कुछ करना होगा, करेंगे।'

इस दैत्य-वाणी से मनभरी सिर से पैर तक सन्न हो गई। शरीर पसीने-पसीने हो गया।

'बोल, खोलती है ?'

उसने चिल्लाकर कहा—'मेरा बच्चा !'

पर इज्जत का मोल उससे ज्यादे था।

बच्चे का गला घुटना शुरू हो गया था। कातिल अँगूठा नली दबाये जा रहा था।

बेटे का वध हो रहा था, माँ जैसे आत्म-हत्या कर रही थी। न जाने कौन-सी शक्ति उसका साँस बन्द किये दे रही थी।

सहसा बच्चे ने तीव्र चीत्कार किया, और फिर सब शान्त हो गया।

आततायी भी मिनट-भर को स्तम्भित रह गये। अब तक, जो मार रहा था, और जो हुक्म दे रहा था—दोनों मन-ही-मन खूब समझते थे, बच्चे की हत्या का भय किवाड़ खुलवाने का सबसे आसान उपाय है। उसे मारना किसी का ध्येय नहीं था। वे कुछ और चाहते थे। अबोध शिशु की हत्या किसी को अभीष्ट नहीं थी।

अब वह मर गया—नायक ने जाकर देखा, बच्चे की पतली-सी जीभ आध इंच बाहर निकल आई है, आँखें खुल गई हैं। उसमें दम नहीं था।

मर गया!

सुनते ही मनभरी ने दीवार में सिर दे मारा, और कटे रूख की तरह ढह पड़ी। मुँह से बोल न निकला; न आँख से पानी। दो मिनट ढही पड़ी रही, फिर पागल की तरह उठी।

नायक का वज्र-गम्भीर स्वर सुनाई पड़ा—'किवाड़ खोलती है, कि···'

उसने दहाड़ मारकर कहा—'हत्यारे! नहीं खोलूँगी···।'

शिशु की हत्या ने नायक का मन निर्बल कर दिया था। मनभरी का उत्तर सुनकर वह आवेश में भर गया। बोला—'किवाड़ तोड़कर हरामज़ादी को बाहर निकाल लो, और सारे घर में आग लगा दो!'

मनभरी ने उससे भी ज़्यादे ज़ोर से कहा—'तोड़ दो किवाड़! लगा दो आग! मार दो मुझे! ···मेरा बच्चा! अरे गाँव वालो,···हो···क्या सब मर गये···!?'

पर न कहीं आवाज पहुँची, न कोई मदद पर आया।

लात-पर-लात पड़ने लगीं, पहले तीन, फिर चार, फिर पाँचों आदमी जुट गए। लकड़ी का किवाड़—कब तक विद्रोह करता? मनभरी किवाड़ के नीचे दब गई।

फिर उसे होश न रहा। उसी नर-पिशाच की वज्र-ध्वनि स्वप्न-से में सुनाई दी। 'सब सामान लेकर चले जाओ, मैं पीछे आऊँगा!'

फिर उसे खटपट की कुछ अस्पष्ट-सी आवाजें सुनाई दी थीं, और फिर गहरी मूर्छा छा गई।

२

मनभरी जब होश में आई, तो चारों तरफ़ घुप्प अन्धकार था। अङ्ग-अङ्ग शिथिल हो गया था। उसने स्वप्न देखा था? एक-एक करके सब बात याद आने लगी। हाँ, दरवाजा टूट गिरा था। फिर?···

उसने स्मृति पर ज़ोर डाला। क्या उसके बाद की सभी बातें सच हैं? उसने आँखें फाड़-फाड़कर देखा। दरवाजा टूटा पड़ा था। जरा आगे सरकी, तो चौक में चाँदनी उसी तरह चिटकी हुई थी, चन्द्रमा मध्याकाश से जरा ही आगे गया था। उस घटना को अधिक देर नहीं बीती।

बिजली की तरह एक बात उसके मस्तक में घूम गई। उसने अनुभव किया, वह अस्त-व्यस्त पड़ी है। धोती अलग हो गई है, जाखट फट-टूट गई है। हे भगवान्! ···यह क्या हुआ!

मन और शरीर का सारा बल लगाकर वह उठी, जल्दी-जल्दी वस्त्र पहने, और बरामदे में चली आई। आततायी चले गये थे। न जाते, ती भी उनका सोच उसे नहीं था। दुनिया उसके लिए अँधेरी हो चुकी थी।

पहले उसने खाट पर हाथ मारा। बच्चा वहाँ नहीं था। चौक में भी नहीं था, छत पर भी नहीं था। हाय। इस समय उसका शव ही मिल जाता!

चटक चाँदनी में वह अभागिनी मिनटों तक स्तम्भित खड़ी रही।

इसके बाद जैसे उसकी रही-सही चेतना लुप्त हो गई। हवा की तेजी से वह काठ की सीढ़ी पर छलाँगें मारती नीचे आई, और बाड़े में होती हुई बाहर निकल आई।

बाड़े में से तीनों भैंस गायब हैं—इस पर भी उसने ध्यान न दिया।

केश उसके बिखर गये थे, कपड़े अस्त-व्यस्त होकर उड़ रहे थे, नंगे पैर रेत में धँसते थे और धूल उड़ाते थे। इस विजन रात में कैसा भी हिम्मती आदमी उसे देखकर भयभीत हो जाता!

कहाँ जा रही थी— यह वह खुद नहीं जानती थी। उसका सब-कुछ लुट गया। अब वह क्या करे—कहाँ जाय—कौन उसे बचावे? उसकी सारी निधि छिन गई, उसके राजा-से पति की धरोहर हड़प ली गई, उसका लाल उससे छिन गया। किसके लिए अब वह रहे? किसे अपना कहे?

दुनिया के किस कोने में उसे जगह मिलेगी ? माथे पर जो कलंक लग गया, सो लग गया—कोई शक्ति उसे मिटाने में समर्थ नहीं है।

वह गौने की रात—वह रस-भरे दिन, वह सुख और आनन्द की हिलोरें; और फिर उसके राजा का वह शरीर, वह मुँह, वह मुसकान; फिर—वह चैन की बंसी, वह मीठी नींद, वह दूधों के दरिया ! वह समय अब कहाँ ?

अपने राजा से वह लड़ पड़ी। वह उसे छोड़कर फौज में चल दिया, जब चिट्ठी आई तो चैन पड़ गया ? फिर उस दिल के टुकड़े पर—उस नन्हें-से बालक पर उसने सारा स्नेह उँड़ेल दिया, राजा की सूरत उसी माँस के लोथड़े की हँसी में देखती रही; राजा लौटकर आता, घर में फिर वही आनन्द का चश्मा बहता ! वह समय अब कहाँ ?

लानत ! उसके जीवन पर लानत ! कोई उसका मुँह न देखे। यह चन्द्रमा छुप जाय ! जंगल के पेड़ पीठ फेर लें ! तालाब का पानी सूख जाय ! जो उसे देखेगा, कलंकित हो जायगा ! हा, अभागिनी !

'कहाँ जाय ? कहाँ जाय ?' के भाव के साथ ही रेल की लाइन दिखाई दे गई। जीवन का अन्त कैसी आसानी से हो सकता है ! इस भयानक यन्त्रणा से छूटने का कैसा सीधा रास्ता है ?

रेल की लाइन पर बैठ गई। हर रोज रात-ढले गाड़ी की आवाज गाँव में जाती थी। अब आती ही होगी। यह भ्रष्ट शरीर छिन्न-भिन्न हो जायेगा ! इस कलंकिनी की मृत्यु-शय्या यहीं होगी। उसका दुर्भाग्य फल-फूटने का पूरा मौका पायेगा।

लाइन पर बैठे-बैठे फिर वही विचार चक्कर लगाने लगे। वही सुखी जीवन, मस्ती के दिन, राजा की सूरत, शिशु का जन्म ! वह जीवन कहाँ गया ? वह सुख अब काहे को मिलेगा ? कौन उसे नींद में गुदगुदायेगा ? कौन उसे नये कपड़े पहनाकर मेले ले जायेगा ? खेत पर रोटी-साग लेकर किसे खिलाने जाएगी। हर सोमवार को किसकी चिट्ठी की प्रतीक्षा करेगी ?

उसका मालिक फ्रांस में है। दसों हजार मील परे—रेल, जहाज, सब के बाद। वह कैसी हौंस की चिट्ठियाँ भेजता है ! उसे क्या पता—

अब आगे चिट्ठी लेने वाली नहीं है।

एक चिट्ठी में उसने लिखा था···

मनभरी ने कान लगाकर सुना—गाड़ी की क्षीण आवाज कान में पड़ी। उसने लाइन पर सिर रख दिया। बहुत दूर परे जैसे कोई लाइन पर हथौड़ा मार रहा था, वातावरण में हल्का-सा कम्पन शुरू हुआ। गाड़ी आ रही थी, अब सब सोच-विचार वृथा है।

अभी सब समाप्त हुआ जाता है! उसके राजा को बहुत औरतें—एक-से-एक अच्छी। उसे क्या फिकर है···। हाँ, पिछली ही चिट्ठी में लिखा था—लड़ाई ज्यादे दिन नहीं चलेगी। अभी किसी खेत में शामिल नहीं हुआ हूँ। घर के लोग याद आते हैं!

आया करें···! हाँ, यह भी तो लिखा था, जान यहाँ आकर प्यारी लगती है। तुमको देखने के लिए जी भटकता है। जल्द आकर···

पर, गाड़ी की आवाज स्पष्ट हो गई है। अभी सब खातमा हुआ जाता है। वह आएगा, तो और बहुत-सी मिल जायेंगी। उसके लिए कमी नहीं।

अब दुनिया की बातों से उसे क्या? कुछ ही देर में उसका अन्त हो जायगा। उसकी देह के किरच-किरच उड़ जायेंगे। प्रातःकाल गाँववालों की भीड़ उसकी खून-भरी देह के चारों तरफ इकट्ठी होगी। चील, कव्वे, चींटी, मकौड़े—सब उसके खून की प्यास में आ-जुटेंगे। लाश के टुकड़े पुलिस में जायेंगे! ···ओह!

रेल की धड़-धड़ स्पष्टतर होती जा रही है।

··सब उसकी हत्या पर टीका-टिप्पणी करेंगे। तरह-तरह के अनुमान लगाये जायेंगे। घर में चोरी हो गई, (ठण्डी हवा से उसकी चेतना धीरे-धीरे जाग रही थी), किवाड़ टूटे मिलेंगे, दरवाजे खुले मिलेंगे। लोग उसके कलंक का अनुमान कर लेंगे। इसके अतिरिक्त···ओह!

रेल बराबर बढ़ती आ रही है।

सारे खानदन पर कलङ्क लगेगा। उसका राजा कहीं मुँह दिखाने लायक न रहेगा। देवर का ब्याह रुक जायगा। बिरादरी दोनों का हुक्का-पानी बन्द कर देगी। बेचारों का जीवन नष्ट हो जायेगा···। ओह!

इंजिन की रोशनी पीली से लाल हो गई थी।

…चोरी हुई है। उसका कलङ्क किसने देखा है? क्या सबूत है? चोरी में क्या कलंक! बल्कि लोगों को हमदर्दी होगी। खानदान तो बदनाम न होगा। सारी बात किसे मालूम है? जब सहज-ही में खानदान की इज्जत बच सकती है, तो…।

पर उसका पाप…उसका मन भयानक व्यथा का अनुभव कर रहा है। अपनी नजर में वह आप उतरा हुआ घड़ा बन गई है। कैसे यह मुँह वह सबको दिखायेगी? …,

इंजन की रोशनी लाल से सफेद होकर उसके शरीर पर पड़ने लगी।

लेकिन उसका वश क्या था? उसे होश भी तो नहीं था।…और फिर खानदान की इज्जत उसकी इज्जत से बड़ी है। खानदान की इज्जत बचाना उसका पहला धर्म है। वह तीर्थ-यात्रा करेगी, उपवास रक्खेगी, शास्त्र सुनेगी…पर यों न मरेगी…!

लेकिन शरीर उसका जड़ हो गया है। मन की निर्बलता विद्रूप कर रही है। हृदय की ग्लानि बेड़ी बनकर पैरों में पड़ गई है।…कैसे मुँह दिखायेगी? …ओह!

इंजन की रोशनी में उसका सारा शरीर जगमगा उठा।…हाँ, रेलवालों ने देख लिया, तो…सुनते हैं, मुकदमा चलता है, फजीहत होती है…तब क्या होगा? …ओह, राम! वह रेल आ रही है। कैसा भीषण गर्जन है! आग की चिनगारियाँ चमक रही हैं! चारों तरफ की धरती काँप उठी है। ओ…

उसके मुँह से अस्पष्ट-सी ध्वनि निकली, और वह गेंद की तरह उछल कर लाइन से परे हट गई।

इंजन बिल्कुल सिर पर ही मालूम होता था, पर अभी वह सौ गज पर था। धरती का कम्पन बढ़ता जा रहा था। उसका दिल भीषण रूप से धड़क रहा था, पैर काँप रहे थे, रक्त बेहद तेजी से चक्कर लगा रहा था। लाइन से 20 फुट परे खड़ी थी। पर धरती के कम्पन से उसने अनुभव किया, मानों इंजन हाथ फैलाकर उसे खींच लेगा। वह और पीछे हटी —और पीछे हटी, और जब रेल बिल्कुल सामने आई, तो पास खड़े हुए

एक नीम के पेड़ से लिपट गई।

रेल चली गई, धरती पहले-जैसी हो गई, ब्रेक-वान की पीठ की सुर्ख रोशनियाँ मोड़ पर जाकर छुप गईं, पर मनभरी की धड़कन दूर न हुई। वह नीम के पेड़ से लिपटी खड़ी थी।

सहसा कुछ उसके ऊपर गिरा। उसने चीख मारी! साँप! एकदम ऊपर नजर गई। किसी की दो आँखें चमकती-सी दिखाई दीं। सहसा पेड़ जोर से हिल उठा, और पत्तियों में कोई काली चीज हिलती दिखाई दी।···भूत!

मनभरी का रक्त-प्रवाह शिथिल हो गया। मुँह जैसे सी गया। एक अन्तिम दृष्टि उसने चाँदनी में नहाये हुए खेतों पर डाली। हैं—यह कौन? सामने कोई भीषण दैत्य हाथ में बड़ा-सा लठ लिए उसकी तरफ आ रहा था!

मनभरी के मुँह से स्वर न निकला, और वह वहीं ढह पड़ी।

सवेरे लोगों ने आकर देखा—एक औरत (गाँव के लोगों ने उसे पहचान लिया) रेल की लाइन से पच्चीस गज परे नीम-मुर्दा हालत में पड़ी है। उसके पास ही रस्सी का एक टुकड़ा, और पेड़ पर एक बड़ा-सा बन्दर पाया गया। थोड़ी दूर पर बरसात की कमी के कारण, एक अस्थायी कुँआ खोद लिया गया था, जिस पर पानी खींचने के लिए दो मोटे शहतीरों पर तिरछी लकड़ी में पिरोकर एक पहिया लगाया हुआ था।

जिस भय ने मानुषी को साक्षात् रण-चण्डी का रूप दे दिया था; उसी भय ने, रस्सी को साँप, बन्दर को भूत और निर्जीव काठ के शहतीर को दैत्य बना दिया।

दुनियाँदारी

उस वर्ष की एल०-एल० बी० पास करने वालों की लिस्ट में कमलाकर सबसे कम उम्र थे। जब नतीजा आया, तो घर में तरह-तरह की खुशियाँ मनाई गईं। परिवार-भर में कमलाकर पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने इतनी ऊँची शिक्षा प्राप्त की। बड़े भाई रुई के बाजार में क़िस्मत आजमाई करते थे, जहाँ उन्होंने लम्बे खेल खेले और घर को सोने से भर दिया। छोटे भाई अभी निरे बच्चे थे और स्कूल की किसी क्लास में पढ़ते थे। पिताजी का देहान्त हो चुका था और माताजी को तीर्थ-ध्यान और भगवद्-भजन को छोड़कर दुनिया की किसी बात से मतलब न था।

बड़े भाई ने रुई के सट्टे में दोनों हाथों कमाया। उर्दू और सराफ़ी के वाजबी ज्ञान को छोड़कर बड़े भाई शिक्षा के नाम पर सफ़ेद थे। मगर ज़बान के इतने मीठे, दिल के इतने साफ़ नज़र के इतने पक्के और वचन के इतने सच्चे कि जग उनका यश गाता था। भाइयों को जान से ज्यादा प्यार करते, माता को तीर्थ की तरह पूजते और स्त्री से भी उनका नाता हिन्दुस्तानी फर्म के दो समझदार साझियों जैसा था। इन्हीं बड़े भाई के तुफ़ैल से कमलाकर सीढ़ी-दर-सीढ़ी चढ़कर मैट्रिक, बी० ए०, एम० ए० और एल-एल० बी० के द्वार पार कर गए। इतने समय में उन्हें कभी यह सोचने का अवसर न मिला कि किताबें, कॉलेज, प्रोफ़ेसर, परीक्षा और प्रतिस्पर्द्धा के अतिरिक्त कोई और भी ऐसी चीज़ है, जिसे सोचना सर्वोपरि और सबसे आवश्यक है। एल-एल० बी० करने पर कई महीने उन्होंने पढ़ाई की लम्बी यात्रा की थकान मिटाने, मित्रों और सम्बन्धियों के बधाई के पत्रों का आनन्द लेने और सहपाठियों, प्रोफेसरों और अन्य मान्य व्यक्तियों के

आमन्त्रण स्वीकार करने में बिता दिए।

आखिर दिन बीते कि इन बातों में पुरानापन आने लगा। आवारगी खलने लगी, बधाई के पत्र बन्द हो गए, प्रोफ़ेसर और सहपाठी अपने-अपने धन्धे लगे और नॉवल पढ़ने, सोने या सुबह-शाम दरिया-किनारे घूमने के अतिरिक्त कमलाकर को कोई काम न रह गया।

इसी समय एक ऐसी घटना हो गई, जिसने उनके जीवन-प्रवाह की गति को एक-बारगी बदल दिया।

बड़े भाई की क़िस्मत का पहिया सहसा रास्ता भूल गया। एक बार रपटे कि सँभलना सम्भव न रहा। लाख की दौलत राख हो गई। इज्ज़त के लेने-के-देने पड़ गए। जिस रुई के सट्टे ने आकाश पर पहुँचाया था, उसी ने पाताल का मार्ग दिखाया। बहुतों ने कहा—'दरख्वास्त दे दो। बड़े-बड़े दे रहे हैं। कौन ऐसा करोड़पति है, जिसके नाम पर दिवाले की मुहर नहीं लगी है? आखिर मर्यादा बचाकर भूखों जान देनी पड़ी, तो क्या बात रही?···अपना ख्याल न करो, कुटुम्ब की तरफ़ तो देखो।' मगर बड़े भाई के दिल पर कोई बात असर न करती थी। उन्होंने सर्वस्व गँवाकर भी लेनदारों का चुकाया और जब कुछ भी न रहा, तो मुँह छिपाकर घर में आ बैठे। जिन्हें मिल गया, बगलें बजाने लगे; जिन्हें न मिला, चुप होकर बैठ गए।

इस घटना ने नक़्शा बदल दिया। बड़े भाई भी एकदम बदल गए और उनके प्रति दुनिया का व्यवहार भी एकबारगी बदल गया।

अब समय आया, जब कमलाकर उस बात का विचार मन में लाने पर विवश हुए, जो किताब, कॉलेज, प्रोफ़ेसर, परीक्षा प्रतिस्पर्द्धा से भी तथा बधाई और आमन्त्रण से भी ऊपर की और आवश्यक चीज़ है।

२

छः महीने के तजरबे ने कमलाकर को बता दिया कि वकालत का पेशा उन जैसों के लिए नहीं है। वकालत के मैदान में किसी तरह घुसे तो सही, मगर जैसे मार-मारकर हकीम बनाए गए हों। उनके ही संगी-साथी जब उसकी तरह काम से चिपटे दिखाई देते, दबादब केस पर केस जीतते, जेबें

भर-भरकर रुपये लाते और ले जाते दिखाई देते, तो कमलाकर झेंप के मारे गड़ जाते थे। छः महीने में बारह मुन्शी बदलने पड़े, बाईस-चौबीस रुपये की सूखी मुलाज़मत पर कौन मस्तराम मुन्शीगिरी कर सकता था? फिर उसकी वसूली के भी लाले पड़े रहते थे। केस तो क्या—कोई नोटिस लिखानेवाला तक दिखाई न देता था। महीने के तीस दिन जब बार-रूम में मुँह बाये बैठे रहते और सन्ध्या को बिना गेंद छुए रिटायर हो जानेवाले क्रिकेट के खिलाड़ी की तरह मुँह लटकाये घर को लौट जाने का प्रोग्राम बन गया, तो कमलाकर ने झेंपकर बार-रूम में बैठना छोड़ दिया। पर गर्मी की शिद्दत में मुन्शी की कोठरी में दिन बिताना भी असम्भव देखकर उन्होंने कचहरी जाना ही क़रीब-क़रीब बन्द कर दिया।

फिर भी आशा और तृष्णा के पतले सूत के सहारे लटके हुए जा रहे थे। घर में भीषण आर्थिक संकट। मकान फाड़ खाने को आता था, सबके चेहरों पर उदासी थी, छोटे भाई का पढ़ना छूट गया और उसे एक अर्द्ध-सरकारी संस्था में बीस रुपये की नौकरी करनी पड़ी, बड़े भाई कमर-टूटे सिंह की तरह कोने में पड़े कराहा करते थे, माताजी का भगवद्‌भजन और ध्यान-पूजा और बढ़ गया था। घर में कोई हँसता चेहरा दिखाई न देता था।

विवाह के कमलाकर कट्टर विरोधी थे और इसीलिये सत्ताइस वर्ष की उम्र तक वे कुँवारे थे। इन सत्ताइस वर्षों में एक दिन ऐसा नहीं आया, जब उन्हें अपने बिरोधी सिद्धान्त पर पछतावा हुआ हो। घर के लोग इस बारे में इतनी काफ़ी बहस कर चुके थे कि कभी न खुल सकनेवाली गाँठ की तरह उन्होंने कमलाकर के निश्चय को उन्हीं की इच्छा पर छोड़ दिया था।

अब इस उदासी के वातावरण में कमलाकर को विवाह की ज़रूरत महसूस हुई और यह अहसास इतना बढ़ा कि ग़रीबी के कारण मन-माफ़िक कन्या न मिलने पर भी उन्होंने जो मिली, झटपट उससे शादी कर डाली।

ससुराल से कुछ रुपया मिला, और कई महीने सुख से गुज़र सकने लायक मनोरंजन भी मिला। इसी से वक़ालत का अभिनय कुछ दिन टिका रह सका।

परन्तु कुछ समय बीता कि फिर वही···। और एक घटना ने तो उनकी वकालत और वकालत करने के इरादे को सदा के लिए तिलांजलि दिला दी।

उस दिन सुबह-गजरदम एक आदमी हाथ जोड़े उनके दफ़्तर के कमरे में घुस आया। उम्र कोई ५१ वर्ष, सिर और दाढ़ी के बाल सफेद, बदन का कपड़ा इंच-इंच पर फटा हुआ और चेहरा दयनीयता की आर्द्रता से ओत-प्रोत !

मालूम हुआ कि ज़िन्दगी में पहली बार मुक़दमे में फँसा है। दस रुपये सैकड़े के ब्याज पर दस रुपये लाया है और बाज़ार में किसी वकील का पता पूछने से उनके द्वार तक आना सम्भव हुआ है। अब यदि वे दस रुपये लेकर किसी तरह उसे उबार सकें, तो उसका रोम-रोम कृतज्ञ हो जाय।

मामला यह था कि किसी महाजन ने साल-भर पहले उससे एक कोरे कागज पर टिकट लगाकर अँगूठा लगवा लिया और कुछ दिन बाद रुपये देने का वादा कर लिया। फिर रुपये देने दर-किनार, अब एक साल बाद सौ रुपये और सूद की नालिश ठोक दी।

कमलाकर ने सारा मामला सुना और उनकी आँखें भर आईं। उन्होंने मेज़ पर रखा हुआ नोट बूढ़े को वापस कर दिया और बताया कि मुक़दमे में उसकी हार होनी अवश्यम्भावी है, फिर भी वे बिना कुछ लिए उसकी तरफ़ से खड़े हो जायेंगे। बूढ़े ने बिन्ती की कि दस रुपये का नोट रख लिया जाय, पर जब कमलाकर इस पर राजी न हुए, तो वह यह कहकर चला गया कि थोड़ी देर बाद लौटकर आएगा। थोड़ी देर बाद क्या, बहुत देर बाद तक भी वह लौटकर आया नहीं।

तीसरे पहर कमलाकर इसलिए अदालत गए कि देखें बूढ़े पर क्या बीती। अदालत के अहाते में एक पेड़ के नीचे बूढ़े से उनकी भेंट हो गई। रोते-रोते उसकी आँखें सूज आई थीं, और वह पागलों की दशा में वहाँ पड़ा हुआ था। डिग्री उस पर हो गई थी और जिस बात को सुनकर कमलाकर का हृदय दहल गया, वह यह थी कि उन्हीं के एक सहपाठी वकील ने सब्ज़ बाग़ दिखाकर बूढ़े से वह दस रुपये का नोट ऐंठ लिया !

३

वकालत के बाद कमलाकर का मन व्यापार पर चला, और कुछ मित्रों और शुभचिन्तकों के प्रोत्साहन पर उन्होंने व्यापार आरम्भ किया।

चार-पाँच हजार की पूँजी से स्टेशनरी की अच्छी-खासी दूकान जम गई। अपनी ससुराल से उन्हें उपरोक्त सहायता मिल गई। बड़े उत्साह से दूकान का श्रीगणेश किया गया। कमलाकर का जी व्यापार में उलझने लगा। उन्होंने रातों-रात जागकर दूकान के दरवाज़ों पर रोगन कराया, लाल्टेन जला-जलाकर फ़र्श पर सिमेंट कराई, अपना हाथ दे-देकर आलमारियाँ सजवाईं और छोटी-मोटी चोटों की पर्वाह न करके भी विलायत से आई हुई स्टेशनरी की पेटियाँ खोल-खोलकर माल लगवाया।

उद्घाटन होते ही दूकान ऐसे ठाठ से चली कि देखने वाले दंग रह गये। सुबह से शाम तक ग्राहकों का ताँता टूटने का नाम न लेता। कमलाकर ने धीरे-धीरे सरकारी और अर्द्ध-सरकारी दफ्तरों में अपनी पैठ करनी शुरू की। थोड़े ही दिनों में दूकान के साथ-साथ दफ्तर, बाबू, चपरासी, टेलीफोन—सब-कुछ हो गया। कमलाकर खुद सारे काम की देखभाल करते, दिन-भर भिन्न-भिन्न दफ्तरों के ऑर्डर लेने के लिए फ़ोन थामे बैठे रहते, ज़रूरत होने पर झट खुद दौड़ जाते। अपने अध्यवसाय और साफल्य से उन्होंने सब किसी को चकित कर दिया।

पर कमलाकर की प्रकृति का एक दोष न गया। यों कहने को उसे गुण कहा जाता है, पर व्यापारी के लिए यह गुण ज़हर की गाँठ है। उनकी प्रकृति में यौवन-सुलभ उद्धतता ज्यों-की-त्यों बनी रही। समय अच्छा था, सफलता मिलती गई, न यौवन-सुलभ उद्धतता किसी को अखरी, न अनुभव शून्यता के कारण कुछ हानि हुई। तैश में आकर किसी से कुछ कह भी उठे, तो लोग हँसकर टाल देते। किसी समय कोई हल्की बात मुँह से निकल जाती थी, तो लोग इसे नातजुरबेकारी का नतीजा समझकर गरदानते नहीं थे। समय बीतता जाता था; कमलाकर परिवार की गत श्री को लौटाने का उपक्रम करते रहे।

चढ़ाकर गिराना और गिराकर चढ़ाना प्रकृति का अटल नियम है। जो जितने दक्ष हैं, उनका उत्कर्ष उतना ही अधिक स्थायी रहता है।

कमलाकर के उत्कर्ष का समय आया, पर वे पासा-चित खिलाड़ी थे। यों उम्र तीस के क़रीब पहुँचती थी, और एक बच्चे के बाप थे, पर तबियत से अल्हड़पन और तुनुकमिजाजी दूर न हुई थी; न स्वभाव में उस ठन्डी सहनशीलता का विकास हुआ था, जो एक व्यापारी को बड़े-से-बड़े संकट के समुद्र से भी साफ़ उबार ले जाती है।

सफलता का ज़ोम बहुत प्रबल होता है। कमलाकर के मिज़ाज की गर्मी बढ़ती ही गई। सौ-पचास का ऑर्डर उनकी आँख में जँचता ही न था और दस-पाँच रुपये तो जैसे ठीकरे के टुकड़े थे। अकसर बात करते-करते गाहक से झुँझला पड़ते थे। बड़े-बड़े ऑर्डर देनेवाले दफ़्तर के मैनेजरों से बहुधा उनकी बात-चीत का ढंग ऐसा हो जाता था, मानो कोई एहसान कर रहे हैं। मुनाफ़े का अनुपात भी अब अन्धाधुन्ध रहता था। लोग उनके पुराने व्यवहार में बँधे हुए थे और इन परिवर्तनों की ओर ध्यान देने का उन्हें अवकाश न था। पर हरएक बात और हरएक चीज़ का समय होता है।

गर्मी के दिन थे। कमलाकर खस की टट्टी के पीछे सजे हुए कमरे में तकिये के सहारे ऊँघ रहे थे। पंखा चल रहा था। सहसा नौकर ने आकर खबर दी—'सरकार, जॉनसन साहब का टेलीफ़ोन है।'

कमलाकर ने ऊँघ से चौंककर पूछा—'कौन जॉनसन?'

'सरकार, बर्नहम कम्पनी के मैनेजर!'

कमलाकर ने झोंक में कह दिया—'कह दो, हैं नहीं।'

नौकर चला गया। घण्टे-भर बाद कमलाकर बाहर आये। क्या देखते हैं—एक नौकर की असावधानी से स्याही की कुछ बोतलें टूट गई हैं, जिससे बहुत-सामान नष्ट-भ्रष्ट हो गया है।

कमलाकर ने लपककर ताँगे का चाबुक उतारा और बेतहाशा नौकर को पीटना शुरू किया। आखिर मारते-मारते थक गये, तो आकर कुर्सी पर बैठ गए। चेहरा गुस्से से लाल हो रहा था। नौकर-चाकर सब दम-साधे खड़े थे। दफ़्तर के आगे की भीड़ धीरे-धीरे छँट गई।

इसी समय फिर टेलीफ़ोन आया। जॉनसन साहब कह रहे थे—'वेल कमलाकर, हमने आज चार दफ़ा फ़ोन किया, आप किधर रहे?'

कमलाकर भरे तो बैठे ही थे; अनखनाकर बोले—'कहिए, क्या मेरे नाम का कोई वारण्ट है?'

जॉनसन ने मजाक में उत्तर दिया—'आपको इसी वक्त हमारे दफ्तर आना होगा!'

कमलाकर ने उसी स्वर में जवाब दिया—'इस वक़्त मुझे बिल्कुल फ़ुर्सत नहीं है।'

जॉनसन ने गम्भीर होकर कहा—'हमें आपसे कुछ लेना नहीं है; आपको बहुत ज़रूरी ऑर्डर देना है।'

अब भी कमलाकर का भाव बदला। कहने लगे—'आर्डर आप टेलीफ़ोन पर लिखवा सकते हैं।'

जॉनसन ने कहा—'टेलीफ़ोन पर नहीं, बिना पर्सनली मिले काम नहीं हो सकता!'

कमलाकर बोले—'बिना पर्सनली मिले काम नहीं हो सकता, आप इधर आइये, मेरे पास टाइम नहीं है।'

कहकर उन्होंने टेलीफ़ोन रख दिया।

उनका यह व्यवहार उनके लिए काल बन गया। जॉनसन विलायत से आया हुआ एक नौजवान था। कमलाकर का यह अपमान उसके कलेजे में पड़ गया। अँग्रेज़ क़ौम की हठ विख्यात है;—जिस किसी के पीछे पड़े कि तबाह कर दिया। जॉनसन ने तुरन्त कमलाकर के सर्वनाश का बीज बो दिया। हफ़्ते-भर के भीतर ऐन मार्केट में किसी योरोपियन ने स्टेशनरी की एक बड़ी भारी दूकान खोल डाली। तार दे-देकर कलकत्ते, बम्बई और बिलायतों से माल मँगवाया गया और शहर के तमाम दफ़्तरों का रुख इस दूकान की तरफ़ फिर गया।

शहर-भर में इस घटना की चर्चा हुई। शुभचिन्तकों ने कमलाकर को समझाया कि जॉनसन की खुशामद करे। किसी ने कहा—'सौ-पचास रुपया लगाकर डाली-वाली झुका दी; फिरंगी का खुश करना ही क्या?' एक सज्जन, जो जॉनसन के खास दोस्तों में थे, कहने लगे—'जॉनसन पक्का पियक्कड़ है; एक दिन पार्टी दे डालो, किसी तवायफ़ का नाच करा देना; बस, तुम्हारे हाथों बिक जायगा, बिक!'

पर कमलाकर की आँखों में दौलत का खुमार था। गर्दन हिलाकर बोले—'देखना है, जीत किसकी होती है। मैंने सिद्धान्त के लिए बड़े-बड़े त्याग किये हैं, अब अपने मुँह पर कालिख न लगाऊँगा।'

मगर कुछ हफ़्तों के भीतर कमलाकर का चेहरा काला पड़ गया। एक-एक करके सभी दफ़्तरों ने उनका बहिष्कार कर दिया। नई दूकान की प्रतिस्पर्द्धा कमलाकर ने अपनी चीज़ों की दर लागत से भी कम कर दी, पर कहीं उनकी पूछ न होती थी। दूकान में माल के अम्बार जमा थे, पर निकासी नाम-मात्र को न थी। दफ़्तरों की अकड़ में खुदरा बिक्री उनकी थी नहीं, बाज़ारवालों से सम्बन्ध बिगड़ चुके थे, अब सुनने और हँसनेवाले सब थे, पर हमदर्द कोई न था। उल्टे जिनका लेना-पावना था, वे मुद्दत से पहले पल्ले पसारकर आ बैठे। बैंक में जितना रुपया था, सब भुगतान में दे दिया। रोकड़ में पाई नहीं, और लेन्दारों की भीड़ लगी हुई। यहाँ तक कि दफ़्तर और दूकान में काम करनेवाले नौकर-चाकर और क्लर्क लोग भी अपनी-अपनी तनख्वाहें माँगने के लिए कमलाकर को चारों तरफ़ से घेरकर खड़े हो गए।

४

जब से बड़े भाई ने रुई के सट्टे में शिकस्त खाई, वे दुनिया से एकबारगी उदासीन हो गए। घर की एक छोटी कोठरी को उन्होंने अपना वास-स्थान बनाया और घरवालों से बोलना तक उन्होंने छोड़ दिया। सच्ची बात तो यह है कि उनकी पत्नी को छोड़कर किसी घर वाले को उनसे कुछ भी हमदर्दी न रह गई थी। बीस रुपये पर ग्यारह घण्टे खटनेवाले छोटे भाई तो मुँह पर ही कभी-कभी यह भी कस दिया करते थे कि भाई साहब की बदौलत ही आज हमें यह दिन देखना नसीब हुआ है। छोटे भाई ही उस समय कमाऊ पूत थे, इस लिए कोई उनके रिमार्क का विरोध न करता था। बड़े भाई सुनते थे और फीकी हँसी हँसकर रह जाते थे। पर मन में और एकान्त में उनकी जो दशा होती थी, वह उल्लेख से बाहर है।

जब से कमलाकर का व्यापार चमका, घर में फिर आनन्द हिलोरें लेने लगा। छोटे भाई भी बीस रुपये की मुलाज़मत छोड़कर दूकान पर मैनेजरी

करने लगे थे, और महीने में दो नए सूट सिलवाने का उन्हें मर्ज़ हो गया था। छोटे बाल-बच्चे भी छींटा खाई हुई बरसाती बेल की तरह लहलहा उठे, घर-भर में श्री और सौभाग्य का चिह्न दिखलाई पड़ने लगा। पर बड़े भाई को दुनिया में दिलचस्पी लेने के लिए यह भी पर्याप्त न था। अब उनका शोक वैराग्य का रूप धारण करने लगा और यदि कमलाकर की स्त्री के मुख से पत्नी के प्रति तरह-तरह के ताने नित्य उनके कान में न पड़ जाया करते, तो वे कभी का संन्यास ग्रहण कर चुके होते।

कमलाकर से महीनों उनकी बात नहीं होती। अकसर एक-एक हफ़्ते तक दोनों भाइयों की देखा-देखी तक नहीं होती। कमलाकर यह ज़रूरी नहीं समझते कि भाई की कोठरी तक जाकर अपने अमूल्य समय का क्षण नष्ट करें। बड़े भाई कुछ नहीं करते और कमलाकर उनके और बाल-बच्चों के भोजन की व्यवस्था करते हैं, इसका उल्लेख उन्होंने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में अनेक लोगों से किया है, और लोग इसके लिए सदा उनकी प्रशंसा करते हैं। यह प्रशंसा भाई के प्रति उनके स्वर्गीय स्नेह की पक्की रसीद है।

पर बड़े भाई अक्सर चुपचाप कमलाकर को भर-नज़र एक बार देख लिया करते हैं। इससे उनकी आत्मा को बड़ा तोष मिलता है। कमलाकर के लिए उनके मन में जो भाव हैं, उन्हें या वे जानते हैं, या भगवान्! पर अपने इस भाव को सबसे अप्रकट रखने को ही वे अपने जीवन की साधना मानते हैं।

गत कई दिनों से कमलाकर के चेहरे पर कुछ नया भाव है। बड़े भाई देखते हैं और समझने की कोशिश करते हैं। घर के और सब लोग भी देखते हैं, पर समझने की कोशिश कोई नहीं करता।

× × ×

रात गए छोटे भाई घबराये हुए आये। शाम को चौके से उस दिन कमलाकर की ग़ैर-हाज़िरी हुई। सब घरवाले चिन्तित थे। छोटे भाई ने आकर सब बात सुनाई। औरतें और बच्चे—यहाँ तक कि बूढ़ी अम्मा भी मनोयोगपूर्वक इस नई विपद् का हाल सुनने लगीं। और भी एक प्राणी सुनने लगा, पर किसी को उसका ध्यान नहीं था।

शाम को तगादेवालों की फ़ौज आ गई। कमलाकर को नौकर तक ज़िबह करने को तैयार थे। बड़ी मुश्किल-से लोगों से एक दिन की मोहलत ली गई। कल या तो दीवाला है—या···। अब कमलाकर दूकान भीतर से बन्द करके वहीं सोये हैं।

गई रात तक मिस्कौट होती रही। अब सब माजरा खुला। पिछले कई सप्ताहों में कमलाकर घर का सब ज़ेवर ले जा चुके हैं। अब घर में कुछ शेष नहीं। किसी के दिमाग़ में कुछ न आया, सुबह चार बजे के क़रीब सब की आँखें झपक गईं।

५

सुबह सात बजे किसी ने दरवाज़ा थपथपाया। रात-भर कमलाकर की पलक न झपकी। आँसुओं से तकिया तर-बतर था और आँखें लाल हो रही थीं। आहट सुनकर माथा ठनका—ज़रूर कोई तगादेवाला है।

दूसरी थपकी पर उन्होंने उठकर दरवाज़ा खोल दिया। देखा तो बड़े भाई! कमलाकर अवाक् रह गए और चार वर्ष पहले का दृश्य उनकी आँखों आगे नाच गया। वही रेशमी शेरवानी, फ़ैल्ट टोपी, चूड़ीदार पायजामा, उँगलियों में जड़ाऊ अँगूठियाँ, जेब में सोने की चेन, बाल सलीक़े से बने हुए, आँखों में सुरमा, मुँह में पान और चेहरे पर नूर बरस रहा था।

कमलाकर को आँखों पर विश्वास न हुआ। अटकते गले से बोले—'भाई साहब—'

बड़े भाई मुस्कराकर भीतर आये और कमलाकर की भीगी आँखों की ओर देखकर हँस पड़े। कहने लगे—'अभी बच्चे ही रहे न! लाओ, तिजूरी की चाबी मुझे दो और खबरदार, जब तक मैं न बुलाऊँ, दूकान पर पैर न धरना! जाओ घर जाओ—सब सूखे जा रहे हैं।'

कमलाकर को कुछ होश नहीं, कितनी देर वे बड़े भाई के पैरों से लिपटे रहे और कब और कैसे वह घर आए।

आठ बजते-बजते नौकर-चाकरों का आना शुरू हुआ। उन्होंने एक नये आदमी को कुर्सी पर तने बैठे पाया। उसके मुँह में कमलाकर के हुक़्क़े

की नाल थी और हाथ में रोज़नामचा। सामने ही तिजूरी खुली पड़ी थी और नोटों की बहुत-सी गड्डियाँ और कुछ खुले नोट और रुपये बिखरे पड़े थे।

सब अपने-अपने काम में चुपचाप लग गये। किसी के मुँह से शब्द न निकल सका।

कुछ देर बाद लेनदारों की भीड़ आकर इकट्ठी हुई। बड़े भाई को सभी जानते थे। उन्होंने सब को आदर से बिठाया, पान इलायची से सबका सत्कार किया और कहने लगे—'सोचा था, बाबू साहब एम० ए० कर चुके हैं, वकालत भी की है। ख़ुद कमा-खा लेंगे। मगर तालीम दूसरी चीज़ है, व्यापार दूसरी चीज़। पचास हजार की उगाही है और नब्बे हज़ार के सरकारी कागज़ धरे हुए हैं, मगर दस-पाँच हज़ार का भुगतान आया तो, होश बिगड़ गये।'

—फिर ज़रा स्वर को और तेज़ करके बोले—'बाज़ार के लोग ऐसे नासमझ हैं कि वह इस बात को भूल गए, कि कमलाकर उस भाई का भाई है, जिसने एक दिन में नौ लाख का भुगतान किया था।···मगर किया क्या जाय, अपना ही तो कीना खोटा है। समझाया था, इस व्यापार में सब ओछे आदमी हैं, न अपनी इज़्ज़त रखते हैं, न दूसरे की इज़्ज़त समझते हैं। मगर···

'···खैर, भाई साहब, कहिए कैसे पधारे?' कहकर बड़े भाई ने एक सज्जन ने कहा—'आपका कोई बिल है?' वे खुली तिजूरी पर नज़र गड़ाए बैठे थे; सहसा यह प्रश्न सुना तो भागने का रास्ता ढूँढ़ने लगे। हकबकाकर बोले—'जी नहीं, मैं तो आपसे मिलने चला आया था!'

'बड़ी मेहरबानी!' बड़े भाई सौजन्यपूकर्व बोले।

'आप तशरीफ़ रखिये, मैं अभी आपसे बात करूँगा।'

—फिर एक सज्जन से बोले—'अच्छा आप तो खाता भी लाए हैं? भाई साहब, अभी आप बच्चे हैं; आपसे क्या कहूँ, मगर इतना याद रखें कि हाथी की माँद बहुत गहरी होती है।'

कहकर भाई साहब ने अपनी बही में उनका हिसाब निकाला और हुक़्क़े का गहरा कश लगाकर कहा—'बस? सिर्फ़ बाईस सौ रुपए?

कहिए—कैसे नोट दूं ?'

—फिर साथ-ही-साथ मैनेजर से बोले—'देखिए, इनके नाम बाइस सौ रुपये लिखकर चुकता की रसीद ले लें और खबरदार, आइन्दा इनसे उधार माल मँगाया।'

अब तो उन महाशय को बाई चढ़ आई। कहने लगे—'राय साहब, इस ग़रीब की रोजी चली जायगी, मैं तो नौकर आदमी हूँ; आप रुपया दूकान पर भेज दें—मैं चला!'

बस, फिर क्या था? एक-एक करके सब चल दिए। कुछ तो सिर्फ़ भाई साहब से मिलने आए थे, कुछ हिसाब मिलाने और कुछ माल का भाव-ताव करने।

६

दिन-भर डटकर काम हुआ। किसी कर्मचारी के मुंह से आवाज़ न निकली। कुछ ही घण्टों में कुछ चुमकारकर, कुछ को डाँटकर, कुछ से हँसकर—सब को बेदाम का ग़ुलाम बना लिया।

बाज़ार-भर में दिन-भर यही चर्चा होती रही। किसी ने कहा—'हमने कहा था न, लाखों बैंक में जमा हैं, यह सिर्फ़ फ़रेब है!' कोई बोला—'अजी, कमलाकर अभी लौंडा है, वह क्या जाने 'बिज़िनेस' किस चिड़िया का नाम है?' किसी ने दबी ज़बान से यह भी कहा—'मगर बड़े भाई भी ख़ूब आदमी हैं! क्या रंग जमाया है!'

बड़े भाई रात को घर न गये। बड़ी रात तक जागकर उन्होंने हिसाब-किताब समझा, असल स्थिति का ज्ञान किया और अगले दिन शाम को, बाबू लोगों के जाने के बाद वे जॉनसन के बँगले पर पहुँचे।

दिन में उन्होंने टेलीफ़ोन पर तय कर लिया था। जॉनसन साहब ने कमलाकर की जड़ छीलने में कसर न रक्खी थी, पर उनकी दृढ़ता के वे मद्दाह थे। बड़े भाई से उनका कोई परिचय न था, पर कमलाकर के बड़े भाई हैं—इस बात ने उन्हें उनसे मिलने के लिए बहुत आकृष्ट किया।

बड़े भाई घोड़ा-गाड़ी से उतरे और साथ में तीन नौकर, सब्जी, मिठाई, रेशमी कपड़ों और खिलौनों के बोझ लिए भी उतरे। सब सामान

चुपके-से मेम साहब के पास भेज दिया गया और बड़े भाई जॉनसन साहब के पास पहुँचे भी न थे कि बच्चे नये खिलौने लिए उछलते-कूदते आ पहुँचे। पीछे-पीछे मेम साहब एक रेशमी थान हाथ में लिए आती दिखाई दीं।

जॉनसन साहब को मालूम हुआ तो ख़ुश हो गए। उन्होंने इज़्ज़त के साथ बड़े भाई से हाथ मिलाया और दो मिनट तक उनका हाथ अपने हाथ में लिए रहे।

बड़े भाई ने हिन्दुस्तानी में ही बात शुरू की। जॉनसन साहब साफ़ हिन्दुस्तानी बोलते थे। उन्होंने अपनी मेम साहब से भी परिचय कराया। बड़े भाई मेम साहब के सम्मुख विनय-शीलता की मूर्ति बन गए। जब साहब ने कहा—'सिट डाउन !' तो आरामकुर्सी के एक कोने पर बैठ गए। साहब ने कहा—'आराम से बैठो' तो बड़े भाई धीरे-धीरे बेतकल्लुफ़ हो गए। साहब के एक बच्चे को गोद में लेकर प्यार करने लगे और साहब से बातें भी करते रहे।

आध घण्टे की बातचीत में ही सब पता चल गया। नई स्टेशनरी की दूकान में रुपया जॉनसन साहब का था और कार्यकर्त्ता उनके चचेरे भाई थे। बड़े भाई ने बातचीत के लच्छों में जॉनसन साहब को ऐसा उलझाया कि वह उनके सौजन्य पर मुग्ध हो गया।

चाय-आदि से बड़े भाई का सत्कार किया गया। बातचीत से बड़े भाई माँप गये—जॉनसन साहब नई दूकान में रुपया फँसा तो बैठे हैं, पर चचेरे भाई की बेईमानी और व्यापार की अनभिज्ञता से परेशान हैं। यह बात बड़े भाई ने जी में धर ली।

उठते-उठते उन्होंने कहा—'साहब, मेरी ख़ुशी तो तब हो, जब आप कल मेरे मेहमान बनें।'

जॉनसन की पत्नी भीतर चली गई थीं। आँख मारकर साहब बोले—'क्या इण्डियन गाना होगा ?'

बड़े भाई ने उसी तरह सैन चलाकर कहा—'सा' ब, तबियत ख़ुश हो जाएगी।'

जॉनसन ने हाथ मुँह की तरफ़ उठाकर कहा—'और यह भी रहेगी ?'

'ज़रूर !'

'तब हम जरूर आएगा।'

पूरे एक सप्ताह तक बड़े भाई घर न गये और कमलाकर दूकान पर न आये। आठवें दिन बड़े भाई ने आदमी भेजकर उन्हें बुलाया।

आते ही बड़े भाई ने एक सन्दूक उनके आगे रख दिया।

दूकान में और कोई न था। कमलाकर ने सन्दूक खोला, तो दो चीज़ों पर नज़र पड़ी। पैसे-दर्जन मिलनेवाले नकली नोटों का एक गट्ठर और स्टेशनरी की नई दूकान का गुडविलसमेत बयनामा।

बयनामा कमलाकर के नाम था और उस पर जॉनसन और उसके चचेरे भाई के हस्ताक्षर थे।

तिजूरी की तालियाँ कमलाकर के आगे फेंककर बड़े भाई उठ खड़े हुए और विषण्ण भाव से बोले—'अट्ठाईस हज़ार के नोट रक्खे हैं; दस बजते ही बैंक भेज देना।'

कमलाकर ने पूछा—'कहाँ से आये हैं?'

'कुछ नए ऑर्डरों का अडवान्स है; बाक़ी सेल हुई!'

कमलाकर के मुँह से बोल न निकला। बड़े भाई दरवाज़े की तरफ़ बढ़े।

कमलाकर बोले—'बैठिए—कहाँ चले?'

'बस, अब जाता हूँ; जीता रहा तो आ मिलूँगा। अपनी भाभी का खयाल रखना।'

कमलाकर घबराकर उठ खड़े हुए और बोले—'मगर आप जाते कहाँ हैं?'

बड़े भाई ने विषण्ण हँसी हँसकर कहा—'तीर्थाटन करूँगा। तुम्हारे काम के लिए मुझे शराब छूनी पड़ी!'

स्वर्ग की देवी

१

बंसीलाल जैसे अनेक उदाहरणों के कारण मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि सार्वजनिक संस्थाओं का पदाधिकारी होना नैतिक चरित्र की उच्चता का सुबूत नहीं। मतलब यह कि बंसीलाल नगर-कमेटी के प्रधान थे; और उनके जीवन की एक बहुत भयानक घटना का उल्लेख इस कहानी में होगा।

उस युवती के अतीत में कोई रहस्यपूर्ण गाथा निहित नहीं थी। न वह सामाजिक अत्याचारों से सताई जाकर पतित हुई थी, और न किसी भग-तिन कुटनी के फन्दे में पड़कर ही इस रास्ते पर आई थी। असली अर्थ में मेमो को वेश्या नहीं कहा जा सकता। वह तो उस अभागी जाति की एक कुमारिका थी, जो अपनी अशिक्षा, अपने दुर्भाग्य और अपने कुसंस्कारों के कारण हमारे सभ्य-समाज से बहुत पीछे छूट गई है, या बहुत ऊँचे रह गई है, और जिसकी ललनाएँ हमारे लोलुप 'सभ्य-समाज' की कामुकता का साधन बनती हैं।

बंसीलाल एक बार नैनीताल गए थे, और वहीं किसी आसपास के गाँव से, थोड़े पैसों में, उसे खरीद लाये थे !

उस वक्त तो हिम्मत कर बैठे, और जब तक नैनीताल में रहे, तब तक भी उस हिम्मत में कमी न हुई, पर जब घर आए तो अजब आफत में पड़े। उस आफत की कल्पना तो हिम्मत से पहले भी की थी, और एक

अस्पष्ट उपाय भी स्थिर कर लिया था, पर मद का उतार होने और हिम्मत के बाँध में सोता खुलने पर जब घर लौटे, तो—उस उपाय की असार्थकता उन्हें खुद ही जँच गई।

वगीची के बँगले में उसे ठहरा दिया। यही उपाय पहले सोचा गया था। पर इस उपाय से तो उनका अभीष्ट सिद्ध हुआ नहीं। यानी चौबीस घण्टे के भीतर-भीतर खबर शहर में भी फैल गई, और घर भी जा पहुँची।

२

तब, इस खबर से, घर में जो विभ्राट् उपस्थित हुआ, उसकी कुछ झाँकी लीजिए।

गृहिणी से मुठभेड़ हुई। आँखें अंगारे वरसा रही थीं, मुँह फूला हुआ था, भौंहें कमान बनी हुई थीं। आते ही ले-दे, ले-दे शुरू हुई।

'क्यों जी, कहाँ है वह ?'

मुँह फक्! 'कौन ?'

'कौन ?' मुँह बनाकर नकल की गई—'जैसे दूध-पीते बच्चे हो; कुछ समझते ही नहीं!'

'आखिर...'

'मैं पूछती हूँ, वह सौकन कहाँ है ?'

'वाह! कैसी सौकन ?'

'वही, जिसे नैनीताल से लाए हो! ...हाय! मैं अभागी मर क्यों नहीं जाती!' रोना शुरू हुआ, पर फौरन ही रुककर बोली—'क्यों जी, मुझे जहर क्यों नहीं दे दिया छटाँक-भर? तब लाते उसे। मेरी छाती पर मूँग दलने को ला बैठाया उस डायन को! हाय! मैं मर क्यों नहीं जाती।'

फिर रोना शुरू हो गया। जैसे क्रोधावेग शब्द-प्रवाह में निकलने का धैर्य धारण नहीं कर सकता, और एकदम पानी बनकर फूटना चाहता है!

बंसीलाल की आफत का क्या ठिकाना! मुँह पर सफेदी छा गई, आँखें स्थिर हो गईं, जीभ बे-काबू हो गई। बुत की तरह खड़े रह गए। मुँह से बोल न निकला।

गृहिणी का रोना फिर अकस्मात् शान्त हो गया। दाँत पीसकर बोली—'तो बोलोगे नहीं अब ?'

'क्या बोलूँ ?'

'बगीचे के बङ्गले में रक्खा है न उस डायन को ?'

'हाँ, फिर…?'

'अच्छा ! अच्छा !' गृहिणी ने हुँकार भरकर कहा—'अब तो या वह रहेगी, या मैं।'

सहसा बंसीलाल को एक बात सूझ गई। झट बोले—'तुम्हारी आदत बड़ी वहमी है।'

गृहिणी का क्षोभ आवाज रोककर खड़ा हो गया। उन्होंने अभिमान-पूर्वक सिर हिला दिया।

'देखो तो, वह बेचारी तो दुखिया है ! उस पर तुम ऐसा लांछन लगाती हो। राम ! राम ! और तुम मुझे ऐसा कमीना समझती हो ?'

गृहिणी के घाव पर ऐसी कोई बात मरहम का काम कर सकती थी। क्षोभ हलका हुआ, और त्यौरी चढ़ाकर बोलीं—'क्या ? खुद ही तो कबूलते हो, और फिर कहते हो, ऐसा समझती हो, वैसा समझती हो।'

'क्या कबूलता हूँ, बंसीलाल ने सँभलकर कहा—'आखिर बताओ तो, तुमने क्या समझा ? किस पाजी ने कान भर दिए ? क्या हुआ ?'

'हुआ मेरा सिर।' गृहिणी ने गरजकर कहा—'मरदों की जात बड़ी बे-दर्द होती है। यह तो सुनती हूँ कि एक जूती टूट गई, दूसरी पहन ली; एक औरत मर गई, झट दूसरी ले आए। पर यह मेरे कैसे भाग फूटे कि मैं जीती बैठी हूँ, और दूसरी को मेरी छाती पर बैठाने के लिए ले आए। आखिर मुझ में क्या खोट आ गया ? मैंने क्या कसूर किया है ? मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है, जो मुझे जलाने के लिए सामान कर लाए ? इससे अच्छा तो यह होता कि पहले मुझे तोला-भर संखिया खिला देते…'

इतना सब-कुछ कह डालने पर भी जब साँस टूटने का लक्षण न दिखाई दिया, तो बंसीलाल को टोकना पड़ा—'लेकिन कुछ मेरी भी सुनोगी या अपनी ही कहे जाओगी ?'

'क्या कहते हो, कहो !'

'पहले तो यह बताओ, किस पाजी ने तुम्हें चंग पर चढ़ाया है ?'

'काले चोर ने ! तुम्हें मतलब ! चंग पर चढ़ाया है, चंग पर ! यों नहीं कहते, पोल खुल गई !'

'फिर वही ! अच्छा, तो तुम कहती हो, सो ठीक ! मैं कुछ नहीं बोलने का।'

'हाँ-हाँ, कहो, कहो। देखूँ, क्या बहाना बनाते हो।'

'जब तुम पहले ही बहाना समझती हो, तो अपनी ऐसी-तैसी कहूँ !'

'तो कुछ कहोगे भी ?'

'देखो वह तो एक दुखिया है !'

'हूँ। दुखिया तो है ही !'

गृहिणी के भाव से विचलित होकर बंसीलाल कहने लगे—विचारी के माँ बाप मर गए थे, और कोई रक्षा करने वाला था नहीं, दाने-दाने की मौहताज थी।'

'बस, फिर तो तुम्हारी पाँचों घी में थीं।'

बंसीलाल काफी साहस संग्रह कर चुके थे। तुनकर बोले—'बस, अब मैं ज्यादा बर्दाश्त नहीं कर सकता ! बात सुननी नहीं कि झट ले उड़ना ! जाओ, मैं कुछ नहीं कहता, मौज करो !'

पति के स्वर में शुद्ध पुरुषत्व की गंध पाकर गृहिणी दब गई। बोली, 'अच्छा, कहो, कहो !'

'नहीं, अब नहीं कहता !'

'अच्छा कहो भी बाबा !' क्रोध तेजी से उड़ा जा रहा था !

बंसीलाल ने कहना शुरू किया—'तो बस, तुम मेरी आदत जानती हो, किसी का दुःख मुझसे देखा नहीं जाता। मैं उसे अपने साथ ले आया !'

'तो तुम्हें मिल कैसे गई !'

'मिल कैसे गई ! वहीं के एक मित्र ले आए थे। बोले—'अगर कुछ प्रबन्ध कर सकें तो अच्छा है। ले जाइए, बेचारी का धर्म भ्रष्ट होने से बच जायगा। अगर किसी बदमाश के हाथ पड़ गई, तो टके-टके पर धर्म बेचती फिरेगी।'

'बस मुझे दया आ गई, ले आया।'

'दया आ गई ?···अच्छा, कहो, कहो !'

'बस, कहूँ क्या ? ले आया।'

'अब क्या करोगे ? क्यों लाए हो।'

'अरे इतने नौकर-चाकर हैं, वह भी पड़ी रहेगी।'

'हाँ !' कहकर गृहिणी रुक गई—'न, नौकर-चाकर पहले ही बहुतेरे हैं, कुछ और प्रबन्ध करो।' मन में बोली—'मुझे पागल समझ लिया है, नौकरानी बनाकर लाए हैं, और बंगले में ठहराया है !'

बंसीलाल चिन्ता ग्रस्त होकर बोले—'भला और क्या प्रबन्ध हो सकता है ? यहीं पड़ी रहेगी। हमारा लेगी क्या ? रोटी-कपड़े में बेचारी क्या खर्च करा देगी !' फिर गृहिणी का चिबुक स्पर्श करके बोले—'रानीजी के लिए एक दासी तो होनी चाहिए ही।'

पर गृहिणी पुरुष-चरित्र के इस लटके में न फँसी। हाथ हटाकर बोली—'न' मुझे दासी की जरूरत नहीं। बर्तन तो नौकर माँज ही लेता है; रोटी को महाराज है। और काम क्या है, जो वह करेगी। व, कुछ और प्रबन्ध कर दो।'

बंसीलाल तुनककर बोले—'वाह अच्छी रही ! और क्या प्रबन्ध हो सकता ?

'क्यों ? किसी आश्रम में दाखिल करा दो !'

'आश्रम में ?' बंसीलाल झिझके, फिर सिर घुमाकर बोले—'आश्रमों की कुछ न पूछो ! भला वहाँ दाखिल होकर किसी स्त्री के चरित्र की रक्षा हो सकती है ? राम-राम ! आश्रमों का नाम लेने से ही मुझे तो नफरत है ! भला, कैसे उसे आश्रम में भेज दूँ ?'

गृहिणी झल्लाकर बोली—तुमने उसका ठेका तो नहीं लिया है ! दुनिया में रात-दिन इतनी औरतें बिगड़ती हैं, किस-किसके चरित्र की रक्षा करोगे ?'

बंसीलाल ने शान्ति की मूर्ति बनकर कहा—'दुनिया-भर की तो नहीं, पर देखो, जिसका बोझ अपने कन्धे पर आ पड़ा है, उसको तो इस तरह जान-बूझकर कुएँ में धक्का नहीं दिया जाता। जरा सोचो तो, तुम तो मौज से रानी बनी बैठी हो, उस दुखिया के दिल पर क्या बीत रही होगी, जो मँझधार में बैठी है, जिसका कोई न दोस्त है, न मददगार !'

गृहिणी द्रवित हुई। सिर झुकाकर बोली—'तो बुरा मानो, चाहे भला; घर में तो न रहने दूँगी !'

बंसीलाल मानो भारी चिन्ता में पड़कर बोले—'घर में न रहने

दोगी ? आखिर तुम्हारा बिगड़ क्या जाएगा ?'

'कुछ भी हो, घर में तो न रहने दूँगी !'

'खैर !'

'खैर क्या ?'

'वहीं रहेगी कुछ दिन, और क्या !'

'कहाँ ? बँगले में ?'

'हाँ, और कहाँ ?'

'वहाँ क्या करेगी ?' भृकुटि फिर तन गई।

वंसीलाल सिटपिटाकर बोले—'बँगला गन्दा पड़ा रहता है, झाड़ू-बाड़ू देती रहेगी, बगीचे की भी सफाई रक्खेगी !'

गृहिणी ने सिर हिलाकर कहा—'जी हाँ !'

'जी हाँ क्या ?'

'इस तरह कब तक चलेगा ?'

बंसीलाल को अचानक एक बात सूझ गई। बोले—'देखो जी, मैं कोई लुच्चा-लफङ्गा नहीं हूँ, जो इस तरह की जिरह करती हो ! मैं तो किस तरह बात करता हूँ, और तुम जड़ ही नहीं जमने देतीं। आखिर मैं भी तो योगी नहीं हूँ, जो तुम्हारी जली-कटी सुनकर चुप बैठा रहूँ !'

गृहिणी मुस्कराकर बोली—'ओहो, रूठ भी गए ! अरे भई, मैं क्या तुम्हें लुच्चा-लफङ्गा कहती हूँ। मैं तो यह पूछती हूँ कि आखिर इस तरह कब तक बँगले में रक्खोगे ? दुनिया तो बड़ी बुरी है, जरा-सी देर में दूध-सी चादर काली हो जाती है !'

'जी हाँ, मैं समझता हूँ !' बन्सीलाल ने कहा—'मुझे अपनी इज्जत का आपसे ज्यादा खयाल है। आखिर काँग्रेस-कमेटी का प्रधान हूँ, शहर का रईस हूँ, तुम्हारी जैसी देवी का स्वामी हूँ, भला मुझे अपनी इज्जत का खयाल न होगा ?'

'हाँ, यही तो, आखिर क्या करोगे ?'

'बहुत जल्दी कोई अच्छा-सा लड़का ढूँढ़कर उसका ब्याह कर दूँगा। जो कुछ मुझसे बनेगा, खर्च कर दूँगा। किसी सुपात्र के घर जायेगी, तो सुख से रहेगी, और मुझे-तुम्हें दुआ देगी।'

'सच कहते हो ?'

'धत्तुम्हारे की ! अब भी विश्वास न हुआ ?'

तब दोनों ने एक-दूसरे को देखा और दोनों हँस पड़े।

३

जागते और सोते पति-पत्नी के दिमाग में क्या-क्या विचार चक्कर लगाते रहे, यह नहीं बताऊँगा, सुबह गजरदम बंसीलाल बिना नहाए-धोए बगीची की तरफ चले।

वहाँ पहुँचते-पहुँचते दिन निकल आया। माली ने आकर बाग का दरवाजा खोला। भीतर घुसे। कमरा खुला हुआ था, और मेमो बिस्तर पर चिन्ता-मग्न बैठी थी। बंसीलाल को देखा, तो हर्षित होकर दौड़ पड़ी और उनके गले से लिपटकर रोने लगी।

पहले कहा जा चुका है कि मद उतर चुका था, तो भी मेमो का भाव देखकर उनका हृदय द्रवित हो उठा। बोले—'अरे ! क्या हुआ ? क्यों रोती हो ?'

मेमो ने रोते-रोते कहा—'तुम कहाँ चले गए थे ?'

'कहीं नहीं, घर··दुकान पर था। इतने दिन में आया था, काम ज्यादा था; वहीं सो गया।'

'तो मुझे भी वहीं बुला लेते !'

इस सरलता पर बंसीलाल हँस पड़े—'क्यों ! रात को कुछ तकलीफ हुई क्या ?'

'मुझे डर लगता था !'

'कहारी तो थी, फिर क्यों लगा डर ?'

'उँह ! वह चुड़ैल तो आते ही खर्राटे भरने लगी। मैंने उसे जगाया, तो बड़-बड़ करने लगी। मुझे बहुत देर तक नींद नहीं आई। बड़ा डर लगा ! अब तुम मुझे छोड़कर कहीं मत जाना।'

'नहीं जाऊँगा।' मुँह से कह दिया, पर बड़े संकट में पड़े। कैसे रहेगी इज्जत ? कैसे छिपी रहेगी खबर ? कब तक बचे रहेंगे। गृहिणी के कोप से ?

तब दोनों पलंग पर बैठे। बंसीलाल जो कहने आए थे, उसे पेश करने का ढंग सोचने लगे। बोले—'असल में यह स्थान है भी निर्जन !'

मेमो ने भोले मुँह से कहा—'हाँ।'

'तो और कहीं चलोगी?'

मेमो ने वैसे ही भोले मुँह से कहा—'जहाँ कहोगे, चली चलूँगी!'

इस भोलेपन पर बंसीलाल का दिल पसीज गया। छाती में जैसे किसी ने घूँसा मार दिया! अपने प्रति हृदय में घोर घृणा का भाव भर उठा। ओहो! कैसी नीचता है!

बंसीलाल जो कहने आए थे, कह न सके।

दोनों वहीं नहाए-धोए; बाज़ार से खाना मँगवाकर दोनों ने खाया और कहारी को मेमो के पास छोड़कर बंसीलाल घर लौटे।

गृहिणी तनी हुई थी। देखते ही बोली—'कहाँ थे अब तक?'

बंसीलाल सहम गए और सिर खुजाकर बोले—'क्या बताऊँ, अजब मुसीबत में फँस गया हूँ।'

'कैसी मुसीबत?'

'वही, उस लड़की की...'

गृहिणी ने नरम होकर कहा—'फिजूल की मुसीबत है। मैंने कहा तो था, निकाल-निकूल दो किसी आश्रम में।'

'यह करना होता, तो अब तक कर ही न देता।'

'तो फिर? ढूँढ़ा है कोई सजन उसके लिए?'

'इसी तलाश में हूँ। आज कई जगह चक्कर लगाया है। क्या बताऊँ, मैं चाहता हूँ, जल्दी इस बला से छुटकारा मिल जाय, जिससे बदनामी न होने पावे।'

गृहिणी ने विरक्ति-सूचित स्वर में कहा—'बस, रहने भी दो!'

बंसीलाल चौंककर बोले—'क्या?'

'भला, आज-कल लड़कों का भी घाटा पड़ा है। सैकड़ों यों ही मारे-मारे फिरते हैं!'

'अब भला किसी ऐरे-गैरे को कैसे हाथ पकड़ा दूँ?'

'ऐरे-गैरे क्यों, कोई सुधारक नहीं मिलेगा क्या? लड़की है कैसी? काली?'

'नहीं, लड़की तो खूबसूरत है!'

गृहिणी ने सिर हिलाकर कहा—'हूँ !'

बंसीलाल झेंपकर बोले—'मतलब यह कि खासी है। पहाड़ी लड़कियाँ गोरी तो होती ही हैं।'

'खैर ! तब तो लड़का मिलना बिलकुल आसान है।'

बंसीलाल ने चिढ़कर कहा—'आसान है, तो तुम्हीं बताओ कोई ! लड़के लुटते-फिरते हैं ?'

'मैं बता दूँ ?'

'बताओ।'

गृहिणी ने हँसकर कहा—'बिरजू से कर दो; बेचारे का घर बस जायेगा।'

बिरजू गृहिणी का चचेरा भाई है, तीस रुपये का नौकर है, अट्ठाईस बरस का हो जाने पर भी अविवाहित है।

बंसीलाल ने चिहुँककर कहा—'बिरजू से !'

'क्यों ? क्या हुआ ? बेचारा बड़ी तकलीफ में है। रोटी-पानी का भी ठीक प्रवन्ध नहीं है।'

बंसीलाल बोले—'यह तो ठीक है, पर ब्याह कैसे हो सकता है ?'

'क्यों ?'

'बिरादरी ?'

'कौन पूछता है बिरादरी को; उसे तकलीफ है, तो कोई बिरादरी-वाला पूछने भी आता है कि तुम्हारे मुँह में कितने दाँत हैं ?'

बंसीलाल कुछ न बोले।

गृहिणी ने पूछा—'क्यों ? क्या सलाह रही ?'

'तुम भी कैसी बातें करती हो। तीस रुपल्ली लाता है, खुद ही मुश्किल से कटती है, उसे कहाँ से खिलायेगा ?'

'ओहो ! तो कोई राजा ढूँढ़ोगे ?'

'राजा नहीं, तो कोई खाता-पीता तो हो !'

'वह क्या भुखमरा है ? कुछ वह लाता है, कुछ वह मेहनत-मजदूरी करेगी; यों ही दिन कट जायेंगे। जानते हो, लड़की का भी तो कुछ भाग है।'

बंसीलाल ने देखा, इन तर्कों से पार न पा सकेंगे। इसलिये लापरवाही से बोले—'देखा जायेगा!' और टाल गए।

गृहिणी कुछ देर चुप खड़ी रही, फिर माथे पर हाथ मारकर बोली—'हाय मेरी तकदीर!'

४

गृहिणी अभी ज्यों-की-त्यों खड़ी थी कि बिरजू ने कमरे में प्रवेश किया। मूँछें बे-तरतीब, रङ्ग काला, चेहरा डरावना, आँखें कुछ लाल, गले में एक तावीज और दाहिने हाथ में एक मोटा लठ था। आते ही मूँछों पर ताव देकर कहा—'जीजी, लग गया पता!'

'क्या?'

'जीजा उसको खरीद कर लाये हैं, महीने-भर नैनीताल के होटल में उनके पास रही!'

गृहिणी को जैसे बिच्छू ने काटा। तड़पकर बोली—'सच?'

'सच!'

गृहिणी के मुँह से बोल न निकला। आँखों में आँसू छलछला आए।

'एक बात का पता और लगा है।'

'क्या?'

'जीजा आज सुबह से वहीं थे।'

'हूँ।'

'दोपहर तक वहीं रहे?'

'दोपहर तक वहीं रहे?'

'हाँ, और बाजार से खाना मँगवाकर उसके साथ खाया।'

गृहिणी जैसे सिर से पैर तक जल उठी। सिर घुमाकर बोली—'अच्छी बात है!'

'मैं अब क्या करूँ?'

'नौकरी पर जाओ, एक नागा तो कर चुके हो!'

'नागा की कोई परवाह नहीं जीजी, और जो कुछ कहो, सो करूँ।' बिरजू के स्वर में दीनता का भाव था।

'नहीं, अब कुछ नहीं। शाम को जल्दी आ जाना।'

'अच्छा, देख जीजी, मेरे भले का खयाल रखनेवाली एक तू ही बची

है !' वह दीनता या पैशाचिता का भाव जैसे फूटकर बह निकला।

गृहिणी ने बिरजू की बात का मतलब समझा, और मन-ही-मन मुस्करा पड़ीं।

५

दोपहर के गये बंसीलाल शाम को लौटे। चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं, और आँखों में चिन्ता का भाव घुसा हुआ था।

इस बार गृहिणी ने पूरे गर्जन-तर्जन के साथ मुकाबला करने की ठान ली थी। देखते ही उबल पड़ी—'देखो जी, मैं साफ़ कहे देती हूँ कि मुझे मारना ही चाहते हो, तो जहर देकर मर डालो।'

बंसीलाल ज़र्द पड़ गये—'क्या हुआ ? क्या हुआ ?'

'क्या हुआ ! क्या हुआ !' गृहिणी ने विकृत चेष्टा बनाकर कहा—'मुझे तो धोखा देते हो, किसी से ब्याह करा दूँगा, दुखिया लड़की थी, दया करके ले आया, यह है, वह है...'

'धोखा ? कैसा धोखा ?'

'कैसे नासमझ बन गए ! जैसे कुछ जानते ही नहीं ! अजी, मुझे सब पता लग गया है। वह सुबह कहते थे न, इधर-उधर मारे फिरते रहे...! ओफ्फो ! ऐसा झूठ !'

बंसीलाल ने देखा, चुप हुए, और इज्जत गई। बोले—'क्या झूठ ? कैसा झूठ ? आखिर कुछ मुँह से भी बोलोगी ? इस तरह बकने से क्या फायदा ?'

'कहते थे, जगह-जगह मारा-मारा फिरा ! यह नहीं करते, दोपहर तक उस डायन से प्रेम की पहेलियाँ बुझाई थीं, उस चुड़ैल के चोचले देखे थे, दोने मँगा-मँगाकर दोनों ने मजे किए थे ! क्यों ? और मुझ से कहते हैं आकर—'मारा-मारा फिरा था।' वाह रे ! मर्दों की जात !'

'किसने बहका दिया तुम्हें ?' बंसीलाल कह तो गए, पर खुद ही समझ गए कि उनकी आवाज धोखा दे रही है।

'किसने बहका दिया ! बहकाते हैं खुद, और दूसरों को झूठा बताते हैं !'

बंसीलाल चुप रह गए।

इस चुप ने सनसनी पैदा कर दी। गृहिणी के नेत्रों में भय ने स्थान ले लिया। बोली—'तो कहो, सच्ची बात बोलो !' दोनों के दिल जोर से धड़क उठे।

एक बार मन हुआ, आत्म-समर्पण कर दें, पर फिर सँभल गए। बोले—'बात यह है कि जिस घर में चुगलखोरों की पैठ हो जाती है, उसके नाश में देर नहीं लगती !'

गृहिणी प्रभावित हुई।

'हमारे घर पर भी अब बुरे दिन आते दिखाई देते हैं। तुम्हारी अकल तो चली गई है हवा खाने; जो कुछ लोगों ने सिखा दिया, उसी पर विश्वास कर लिया। अपना आदमी तो बोलता है झूठ, और दूसरा कहता है सच !'

'तो तुम सच्चे हो ?'

'और नहीं क्या ?'

'तुम दोपहर तक उसके पास नहीं रहे ?'

'झूठ बात। मुश्किल से आधा घंटे !'

'बाजार से खाना मँगाकर नहीं खाया ?'

'कौन सुसरा कहता है ! फिजूल गुस्सा दिलाती हो !'

'तो कहो न, नहीं मँगाया, नहीं खाया ?'

'मँगाया था, तो अपने लिए कि उसके लिए ? आखिर खाना तो वह खाती ही कि नहीं ?'

गृहिणी क्षण-भर चुप रही, फिर बोली—'अच्छा, अब तुम्हारे जी में क्या है ?'

'बस, अब दो-चार रोज में कोई प्रबन्ध किए देता हूँ।'

'देखोजी' गृहिणी ने हुँकार भरकर दृढ़तापूर्वक कहा—'जैसे मैं कहती हूँ, वैसे करना होगा; नहीं तो, याद रक्खो, तुम्हारा वह फजीता होगा, जिसका नाम ?'

'धमकी तो रहने दो, जो कहना है, सो कहो ?'

'देखो, दो-चार दिन तो दरकिनार, अब मैं दो-चार घंटे भी बर्दाश्त नहीं कर सकती ? तुम्हें फौरन उसका प्रबन्ध करना होगा ?'

'फौरन ?'

'हाँ, अभी; चाहे किसी आश्रम में भेजो, चाहे किसी से ब्याह कर दो; चाहे कुछ भी करो, अभी कर डालो।'

बंसीलाल चिढ़कर बोले—'चाहे कुएँ में फेंक दूं ?'

'हाँ, चाहे कुएँ में फेंक दो ?'

बंशीलाल कई मिनट चुप खड़े रहे। फिर बोले—'अच्छी बात है, अभी प्रबन्ध कर दूंगा।'

'क्या करोगे ?'

'कुछ भी करूँ; चाहे कुएँ में फेंक दूं ?'

'तुम्हारी मर्जी हो, सो करो।' गृहिणी ने कड़ा जी करके कह दिया।

बंसीलाल ज्यों-के-त्यों चल दिया।

दस मिनट बाद बिरजू आया। आते ही बोला—'उधर से ही आ रहा हूँ जीजी, अभी तो वहीं है।'

'वहीं है न ? हूँ!'

'अब ?'

'तुमने खाना खाया कि नहीं ?'

'नहीं।'

'तो यहीं खा लो। फिर झटपट बगीची चले जाओ। तुम्हारे जीजा उधर ही गए हैं। उन पर नजर रखना कि क्या करते हैं।'

'अच्छा, अभी लो!' कहकर बिरजू चलने को तैयार हुआ।

'खाना तो खा लो।'

'भूख नहीं है।' और वह सरपट बगीची की तरफ दौड़ा। बिरजू की व्यग्रता पर गृहिणी खड़ी-खड़ी हँसती रही।

६

रात को दस बजे तक दोनों में से कोई न लौटा। दस बजे के बाद बंसीलाल आए। गृहिणी ने कुछ पछतावे के भाव से कहा—'बड़ी देर हो गई।'

बंसीलाल गुर्राकर बोले—'तुम्हारी बला से!'

ग्रहिणी सहमकर चुप हो गई!

बंसीलाल ने उबाल खाकर कहा—'मैंने कहा न, अब इस घर का

नाश होने में देर नहीं है। तुम्हें तो चुगलखोरों ने ऐसा उँगलियों पर नचाया है कि न मेरी बात पर भरोसा है न मेरे दुख तकलीफ का खयाल ! तुम्हारे दिल में इतनी ममता नहीं, इतनी दया नहीं कि दिन-भर कड़ी धूप में मारा-मारा फिरा, और शाम को आते ही पानी की पूछी, न दाने की, चला दिया हुक्म।'

ग्रहिणी मे लज्जित होकर कहा—'तो मैंने यह थोड़े ही कहा था कि रात के दस बजे तक वापस ही न लौटना।'

बंसीलाल चुभते हुए स्वर में बोले—'दस बजे क्या अगर रात-भर भी न आता, तुम्हें क्या परवा थी ! तुम्हें तो उस सौकन के भय ने हैवान बना दिया था ! मैं चाहे मर भी जाता······'

ग्रहिणी ने बात काटकर कहा—'अब तुम बड़ी-बड़ी बातों पर आने लगे।'

'सच ही तो कहता हूँ ! याद रक्खो, तुम्हारे आज के आचरण ने मेरे मन पर बड़ी ठेस लगाई है। मुझे दिन-भर परेशान होने का इतना खयाल नहीं है, जितना इस बात का कि तुम मुझे ऐसा नीच और चरित्रहीन समझती हो।

ग्रहिणी ने समझ लिया, सौकन का तीन-पाँच कुछ हो चुका है, तभी यह तड़क-भड़क है ! तो भी वह उनके मुँह से सुनने को उत्सुक थी, क्या हुआ ! पर पूछे कैसे ? बंसीलाल तो हाथ ही न रखने देते थे, और दूर से ही बिदके जाते थे !

स्त्री का आत्म-समर्पण पुरुष पर विजय-प्राप्ति का अंकित अस्त्र है। गृहिणी अत्यन्त खेद-पूर्ण स्वर में बोली—'अब तुम तो एकदम नाराज हो गए ! जानते नहीं, औरत का दिल कितना छोटा होता है ? उसे समाज ने सब तरफ से जकड़ रक्खा है। एक जरा-से घेरे में, सिर्फ एक आदमी पर उसका थोड़ा-सा अधिकार होता है। उस पर अपने अधिकार को अक्षुण्ण रखने के लिए औरत हमेशा प्रयत्नशील रहती है। जरा-सा मौका कहीं से नजर पड़ा कि औरत का दिल एक-साथ बिलबिला उठता है। आई समझ में ? तुम मर्दों-जैसा उदार हृदय हम अभागिनी औरतें कहाँ से लावें ?'

बंसीलाल ने पिघलने की उदारता दिखाई, या कहें, पिघलने में ही

कल्याण समझा। ज्यादा तनने की गुन्जायश ही नहीं थी। बोले—'बातें बनाना तो खूब ही जानती हो! मिनट-भर में आदमी को पानी बना देना तो तुम्हारे बाएँ हाथ का काम है!'

बस, सुलह हो गई।

तब भोजन का अनुरोध हुआ, आग्रह हुआ, और अन्त में प्रार्थना हुई। बंसीलाल ने कपड़े बदले, और कुछ मिठाई खाकर पानी पिया।

जब दोनों जने चित्तरसारी में पहुँचे, तो गृहिणी के धैर्य का बाँध टूट ही पड़ा। पूछ बैठी—'क्या कर आए?'

'क्या?'

'क्या प्रबन्ध कर आए?'

'किसका?' माथे में बल पड़ गए।

'उसी सौकन का।' कहते-कहते गृहिणी हँस पड़ी।

बंसीलाल ने कठोर स्वर में कहा—'कुएँ में डाल आया!'

गृहिणी ने गले में हाथ डालकर कहा—'उँह! फिर नाराज हो गए!'

बंसीलाल ने क्षुब्ध बनकर कहा—'नाराज भी न होऊँ?'

'बताओ—सच्ची! तुम्हें मेरी कसम!'

कहता तो हूँ, कुएँ में डाल आया!'

'वा···ह! बताते ही नहीं! अच्छा, जाने दो, अब नहीं पूछूँगी!' गृहिणी ने मुँह बना लिया।

कुएँ में ही डालना है। सच, एक आश्रम में प्रविष्ट करा आया!'

'सच?'

'झूठ।'

'नहीं, मैं पूछती हूँ, कुछ बोली तो नहीं।'

बंसीलाल ने द्रवित बनकर कहा—'क्या बोलती दुखिया, वह तो बेजबान गाय थी, जिधर कसाई ले गया, चली गई!'

गृहिणी के दिल में दर्द हुआ। पर मुँह से कुछ न बोली।

बंसीलाल ने भारी स्वर बनाकर कहा—'तुमने मुझ से बड़ा पाप कराया है, मुझे बड़ा कष्ट हुआ है!'

बंसीलाल को जैसा कष्ट हुआ था, वह तो आगे मालूम होगा, मगर

गृहिणी को वास्तव में कष्ट हुआ। पर बला टली समझकर उसने उस कष्ट को प्रकट करना उचित न समझा, इसलिए प्रकरण बदल देने के खयाल से पूछा—'इतनी देर कैसे हो गई ? चार घंटे लगा दिए !'

बंसीलाल ने सफाई से कहा—'कल काँग्रेस-कमेटी की तरफ से शहर में जुलूस निकलेगा, उसी की तैयारी के लिए दफ्तर में देर लग गई !'

'जलूस निकलेगा ? अच्छा !

'हाँ; चलना।'

'चलूँ ? लाठियाँ तो न पड़ेंगी ?'

बंसीलाल ने बे-सोचे जवाब दिया—'नहीं।'

तब गृहिणी सुख की नींद सो गई।

६

बंसीलाल दिन निकलने के पहले उठे, तो गृहिणी की आँख खुल गई। चौंककर बोली—'अभी तो बहुत सवेरा है। अभी क्यों उठते हो ?'

बंसीलाल ने सिटपिटाकर कहा—'जरा काम है !'

'क्या काम है ?'

'हाँ···वह जुलूस निकलने वाला है न, उसी की व्यवस्था···'

'तो किस वक्त चलेगा जुलूस ?'

'ठीक नौ बजे।' कहकर बंसीलाल नीचे उतर गए। गृहिणी ने कहा—'मैं नौकर को लेकर आ जाऊँगी !'

बंसीलाल ने सुना या नहीं, कह नहीं सकते।

दिन निकला। गृहिणी उठी कि हाथ में लठ लिए बिरजू आ मौजूद हुआ। शरीर में और सिर में तेल मले हुए था, आँखों में सुर्मा डाले हुए था, और चेहरे पर भय और भेद का मिश्रित भाव खेल रहा था !

आते ही इधर-उधर देखा, और बोला—'जीजा तो गए न ?'

'हाँ।'

'जीजी, बड़ी खराब खबर है।'

'क्या !'

'मैं रात को भी आया था, पर जीजा के सामने पड़ने की हिम्मत न हुई। मुमकिन है, उन्हें शक हो जाता, इससे लौट गया।'

गृहिणी ने व्यग्र होकर पूछा—'क्या बात है ?'

'जीजाजी ने कुछ कहा था ?'

आश्रम में दाखिल करा आए हैं।'

बिरजू ठठाकर हँस पड़ा, और बोला—'ओफ्फो ! क्या चकमा दिया है !'

गृहिणी भय-विह्वल होकर बोली—'क्यों ?'

'अजी, कैसा आश्रम !'

'फिर ?'

'मैं तीर की तरह बगीचे में जा पहुँचा।' बिरजू ने अपना वहादुरी का हाल सुनाया—'वहाँ इस तरह छिपकर खड़ा हुआ कि मैं तो सब को देखूँ, और मुझे कोई न देखे। जीजाजी बहुत देर तक भीतर घुसे रहे। फिर माली के हाथ उन्होंने गाड़ी मँगाई, और दोनों जने उसमें बैठकर चले···'

'दोनों जने ?'

'हाँ, दोनों जने। तुम्हारा हुक्म था कि पीछा न छोड़ना, इसलिए मैंने पैसे का मोह छोड़ दिया, और एक ताँगे में बैठकर गाड़ी के पीछे चला।··· मोहल्ले के आगे दोनों उतर गए, मैं भी उनके पीछे चला। वहाँ एक कमरा पहले से ही तैयार था। कहारी भी मौजूद थी, एक नौकर भी आ गया था, सजावट, रोशनी, सब बातों से लैस। बस, जीजाजी ने वहीं उसे टिका दिया !'

गृहिणी मानो आकाश से गिरी। मुँह से बोल न निकल सका।

'बस, मैं भी बाहर बैठा उनका इन्तजार करता रहा। दस बजे के करीब जीजा बाहर आए। मैं भी घर तक उनके पीछे-पीछे आया। मुझे तो तुम्हारे हुक्म की तामील करनी थी !'

'अरे ! तो क्या कांग्रेस-कमेटी की बात झूठ थी ?'

'कैसी···?'

'क्या वहाँ से आकर कांग्रेस-कमेटी में भी गए थे ?

'न, सीधे घर आए थे। मैं तो रास्ते-भर उनके पीछे रहा। जाते, तो मैं देखता नहीं, मैंने एक मिनट को भी उनका पीछा नहीं छोड़ा। मुझे तो जीजी, तुम्हारे हुक्म की···'

गृहिणी ने घबराकर पूछा—'तो वह उस कमरे पर है ?'

'हाँ, मैं उधर ही से होता हुआ आया हूँ, अभी तो वहीं है।'

'तुम रास्ता जानते हो ?'

'वाह ! मैं तो अभी होकर आया हूँ !'

गृहिणी झटपट भीतर गई, और कपड़े बदलकर बाहर आई। बोली—'बिरजू, चलो मुझे उस कमरे पर ले चलो।'

'तुम्हें ?' बिरजू ने अचरज और हर्ष से विह्वल होकर कहा—'कोचवान को आवाज दूँ, गाड़ी ले आवेगा !'

'न, चलो; बाजार से ताँगा कर लेंगे !'

दोनों चल पड़े।

८

गृहिणी को अपनी खूबसूरती पर थोड़ा-बहुत घमण्ड था, पर मेमो को देखा, तो अवाक् रह गई। मेमो चाहे संगलदीप की परी न थी, पर ऐसी जरूर थी, जिसकी कल्पना गृहिणी ने न की थी।

जब कमरे में पहुँची, तो उसे गाल पर हाथ रक्खे बैठी पाया। शरीर पर महीन धोती थी, सिर के बाल खुले हुए थे, और मुँह दिप-दिप कर रहा था !

उसने गृहिणी को देखा, और सकुचाकर गर्दन झुका ली। न जाने क्या-क्या मंसूबे लेकर गृहिणी घर से चली थी, देखते ही सब मिट्टी हो गए। आकर बैठी, और धीरे-से बोली—'बीबी, तुम्हारा क्या नाम है !'

बोलते हुए मेमो का चेहरा लाल हो गया। जवाब दिया—मेमो।'

'मेमो !' हठात् पीछे खड़े हुए बिरजू के मुँह से निकल गया। 'मेमो ने नजर उठाकर उसकी तरफ देखा। बिरजू के हर्ष का क्या ठिकाना !

गृहिणी ने कहा—'यहाँ कैसे आई ?'

'बाबू के साथ आई हूँ।'

'कहाँ रहती हो ?'

उसने गाँव का नाम बता दिया।

'बाबूजी कहाँ गए ?'

'काम से गए हैं। कहते थे, दोपहर तक लौट आऊँगा !'

'तुम्हारे कौन होते हैं ?'

'कौन ?'

'बाबूजी !'

'कौन होते हैं !' उसने चकित होकर कहा—'बाबा ने उनके साथ मेरा ब्याह कर दिया था !'

गृहिणी की छाती में जैसे मुक्का लगा। तड़पकर बोलीं—'ब्याह कर दिया था ?'

'हाँ, बाबूजी को हाथ पकड़ा दिया था। कहा था, हमेशा इनके कहे में रहना !'

गृहिणी ने ओठ काटकर कहा—'कब हुआ था ब्याह ?'

'एक महीना हुआ।'

'एक महीने से कहाँ रहती थीं ?'

इस जिरह से मेमो कुछ विचलित हो उठी। शर्माकर बोली—'जितने दिन बाबूजी नैनीताल रहे, वहाँ रही, अब यहाँ आए, तो यहाँ ले आए !'

मेमो के भोलेपन से गृहिणी द्रवित हुई, और पति के विश्वासघात से क्षुभित। दोनों भावों ने मिलकर आँसू लाने की तैयारी कर दी।

'तुम्हें मालूम है, बाबूजी का ब्याह हो चुका है ?'

मेमो आँखें फाड़कर देखने लगी।

बिरजू ने चिल्लाकर कहा—'अरी तुझे तो बाबूजी ने धोखा दिया है, यह खुद उनकी स्त्री बैठी है !'

मेमो ने दोनों हाथ जोड़कर गृहिणी को प्रणाम किया।

गृहिणी ने कहा—'बीबी, तुम्हें बड़ा धोखा हुआ !'

मेमो कुछ न बोली।

बिरजू ने कहा—'अरी, तू बड़ी पागल है ! तू भी अब बाबूजी को अँगूठा दिखा दे।'

गृहिणी बोली—'देखो बीबी, उनकी तो मति मारी गई थी, जो तुम्हें चंग पर चढ़ा लाए। अब उन पर धड़ाधड़ जूतियाँ पड़ रही हैं, और वह अब तुमसे पिंड छुड़ाना चाहते हैं !'

मेमो ने सिर उठाकर गृहिणी को ताका। आँखों में आँसू भरे हुए थे।

गृहिणी को दया आ गई। पर दया करके अपना ही गला कैसे काटती ? बोली—'बीबी, अब रोने से क्या फायदा ? अब तो तुम अपने लिए कोई ठिकाना ढूँढ़ो। कहो, तो मैं कोशिश करूँ !'

आँसू टपक पड़े।

गृहिणी ने कहा—'किसी खाते-पीते, भले आदमी से ब्याह कर लो। जिन्दगी आराम से कट जायेगी। तुम्हारे बाप ने रुपये के लालच में तुम्हें कुएँ में फेंक दिया था। खैर, अब भी कुछ नहीं बिगड़ा।'

बिरजू के चेहरे का भाव देखकर हँसी आती थी !

मेमो ने धोती के पल्ले से आँखें पोंछी।

गृहिणी निष्ठुर बनकर बोलीं—'बोलो, क्या इरादा है ? बाबूजी की आशा तो छोड़ दो। वह अब तुम्हारे पास भी न आवेंगे। अगर मेरी बात मानो, तो ब्याह कर लो, लड़के का प्रबन्ध मैं कर दूँगी। मेरी बात नहीं मानोगी, तो याद रखो, बड़ी दुर्दशा में पड़ोगी। तुम अभी लड़की हो, सुन्दर हो, नासमझ हो। दुनिया बड़ी बुरी है। इस जमाने में औरत की इज्जत······'

मेमो इन सब बातों को नहीं समझ रही है। उसकी आँखें तो एक ही दृश्य देख रही हैं, उसके कान तो एक ही आवाज सुन रहे हैं, उसका मस्तिष्क तो एक ही विचार से ओत-प्रोत है।

बिरजू बोल रहा था—'जीजी की बात गाँठ बाँध ले। जमाना बड़ा बुरा है। स्त्रियों की इज्जत का भगवान् ही मालिक है। समझ ले, सोच ले, अभी कुछ नहीं बिगड़ा है, जीजी की बात बावन तोले पाव रत्ती की है !"

मेमो ने सिर उठाकर गृहिणी को भर-नजर ताका, और फिर एकदम खड़ी हो गई।

आँसू निकलने बन्द हो गए।

गृहिणी ने पूछा—'क्यों बीबी ?'

मेमो ने दृढ़ स्वर में कहा—'जाती हूँ।'

'कहाँ ?'

'अब इस शहर में नहीं रहूँगी !'

'कहाँ जाओगी?'

'जहाँ सींग समायँगे!'

गृहिणी दहल उठी। पर हाय रे स्त्री-हृदय! उस सीमित राज्य के आधिपत्य की चिन्ता विवेक-अविवेक का ज्ञान भी भुला देती है!

मेमो ने कुछ न लिया, वही धोती पहने चल पड़ीं। जब दरवाजे पर पहुँची, तो गृहिणी ने पुकारकर कहा—'बीबी, मेरी एक विनय है!'

मेमो पीछे फिरी। बिरजू का दिल जोर से धड़कने लगा।

'इन्हें अपने साथ लेती जाओ। मेरी विनय है।' गृहिणी ने शरीर के तीन-चार कीमती जेवर उतारकर रूमाल में बाँधे, और पोटली मेमो के हाथ में दे दी।

मेमो ने स्थिर नेत्रों से गृहिणी का भाव देखा, और बिना बोले पोटली ले ली।

बिरजू का चेहरा फक् हो गया! बहन पर उसके क्रोध का ठिकाना न था!

आखिरी कोशिश करने से बाज न आया। बोला—'अरी, क्यों पागल बनती है, कहाँ मारी-मारी फिरेगी! चल, मेरे साथ चल, आराम से रहियो।'

मेमो बिना उसकी तरफ देखे निकल गई।

९

गहनों की पोटली हाथ में लिए हुए मेमो चल पड़ी। शहर बिल्कुल नया था, भीड़-भड़क्का कभी देखा नहीं था, रास्ता जाना नहीं था, इसलिए आफत में पड़ गई।

नुक्कड़ पर एक पनवाड़ी की दुकान थी। वहाँ खड़े होकर उसने पूछा—'भाई, यह सड़क किधर जाती है?'

चौक।'

'और यह?'

पनवाड़ी ने संदिग्ध नेत्रों से ताककर कहा—'तुम्हें कहाँ जाना है?

मेमो ने फिर कोई प्रश्न न किया, और चल दी।

पनवाड़ी की दूकान पर एक छैल बैठा था। झट पीछे हो लिया।

अगले मोड़ पर एक दूध वाले की दूकान थी। मेमो ने पूछा—'क्यों भाई, यह सड़क कहाँ जाती है।'

'जमनाजी' और दूधवाला भौंचक-सा देखता रह गया।

मेमो आगे बढ़ी, तो दूधवाले ने झट दूकान बन्द की, और पीछे-पीछे चल दिया।

मेमो बिना आगे-पीछे देखे चली जा रही थी। बहुत फेर खाकर, घूमती-घामती जमना-किनारे पहुँची। हजारों आदमियों की भीड़ थी। जिधर निकल जाती थी, लोगों की भीड़-की-भीड़ खड़ी होकर देखने लगती थी।

हलवाई और छैल पीछे-पीछे आ रहे थे।

मेमो किनारे-किनारे चल दी। जहाँ पहुँचकर रुकी, वहाँ कोई न था। जमना तेजी से बह रही थी। पानी बहुत गहरा था, किनारे पर खड़ी होकर कुछ देर तक न-जाने क्या सोचती रही, फिर हाथ की पोटली को पूरे जोर से पानी में फेंक दिया।

तब उसने चारों तरफ देखा। खोजती थी, मरने में बाधा देनेवाला तो कोई नहीं है! पर एक नहीं, दो थे, और दोनों दौड़े आ रहे थे।

मेमो सहमकर दो कदम पीछे हट गई। तभी दोनों आनेवाले भी ठहर गए।

जो मेमो क्षण-भर पहले जान देने को तैयार थी, वही इन दोनों को देखकर भयभीत हो गई, और तेजी के साथ वापस लौटी। जब भीड़ में आ मिली, तब साँस ली।

उसके दिमाग में जिन विचारों का संघर्ष हो रहा था, उसका ठीक-ठीक चित्रण करना असम्भव है। बस, यही कहना चाहिए कि जो कुछ करती थी, जैसे स्वप्न में करती थी। आँखें स्थिर और डरावनी बन गई थीं, कान गुम और बहरे हो गए थे, चेहरा सफेद झक्क पड़ गया था, और अंग-अंग जैसे जवाब देने लगा था।

कुछ देर भीड़ में फिरती रही, फिर जिधर से आई थी, उधर ही चल दी।

छैल और हलवाई भी पीछे थे।

मोम की पुतली की तरह सरकती चली जाती थी। दो सड़कें पार कर चुकी थी कि सहसा कोई सामने आ खड़ा हुआ।

बिरजू था।

देखते ही बोला—'ओहो! बड़ा परेशान हुआ! शुक्र है, तुम मिल गईं!'

मेमो ने कुछ न सुना।

बिरजू बोला—'जीजी ने तुम्हें भेज तो दिया; पर पीछे वहुत पछताईं, और मैंने भी बड़ा जोर दिया! तब बोली जाओ, उसे ढूंढ़ो, जहाँ मिले; ले आओ।'

मेमो ने अब भी कुछ न सुना।

बिरजू, कहता रहा—'जीजी जुलूस में शामिल हो गई हैं चलो, वहाँ से उन्हें ले लेंगे।'

मेमो तो बहरी हो गई थी, उसने कुछ न सुना, न कुछ समझा। बिरजू ने अपनी बात समाप्त करके हाथ का संकेत किया, तो झट साथ हो ली।

यह दृश्य देखकर दोनों पीछा करने वाले निराश हुए, फिर भी पीछा छोड़ने को उनका जी न चाहा।

१०

जुलूस गुजर रहा था।

मामूली जुलूस था, पर चौक तक पहुँचते-पहुँचते भीड़ वेहद वढ़ गई। सुबह का वक्त था, इतवार का दिन, इसलिए स्कूल-कॉलेज के लड़के, बे-सरकारी दफ्तरों के बाबू और सुबह घूमने वाले सैलानी भी शामिल हो गए थे।

चिल्लाने से जोश क्यों बढ़ता है, इसका डॉक्टरी विधान देने में हम अक्षम हैं। पर, देखा जाता है कि ज्यादा चिल्लाओ, तो स्फूर्ति, उत्तेजना और क्रोध का आविर्भाव हो ही जाता है। अब भारत के नौजवानों के पास और रह ही क्या गया है? आज आर्म्ज-ऐक्ट की दया से अंगुल-से-डेढ़ अंगुल चाकू रखना पाप है, लाठी गई दफा 144 में, घूंसेबाजी हिन्दोस्तान के लिए बनी नहीं, बस, सिवा जबान के रह क्या गया?

इसी जवान का भरपूर उपयोग किया जा रहा है, और जुलूस काफी

ज्यादा उत्तेजित हो गया है।

आगे-आगे नौजवानों का दल है, उससे पीछे औरतें हैं, और सब के बाद ऐरे-गैरों की भीड़!

बंसीलाल अजीब फबन से, साक्षात् सदाचार और संयम की मूर्ति बने, इधर-से-उधर दौड़े-दौड़े फिरते हैं!

सहसा एस०एस०पी० की मोटर आ निकली। अशान्ति का इमकान न था, इसलिए मोटर खुली हुई थी। पर नौजवानों का दल अपनी जीभ का उपयोग करने से बाज न आया, और 'शेम-शेम' और 'डाउन-डाउन' की आवाज होने लगी!

मोटर पर एक छोटा यूनियन-जैक फहरा रहा था। एक मनचले ने आगे बढ़कर उसे उतार फेंका।

एस० एस० पी० अधिकार-मद में चूर थे। लोगों के इस 'खेल' का तमाशा देखने और मातहतों पर अपनी बहादुरी का रौब जमाने के लिए ही उनका आगमन हुआ था। यूनियन-जैक फटता देखा, तो लाल हो गये, और भरा हुआ रिवॉल्वर जेब से निकाल लिया।

उधर भी जोश था। रिवॉल्वर निकालना था कि शोर मच गया। किसी ने एक ईंट का टुकड़ा भी फेंक मारा। मोटर का शीशा तड़क गया।

एस० एस० पी० ने पाँच-छ: फायर किए, और मोटर दौड़ाकर कोतवाली की तरफ चला।

कई आदमी जख्मी हो गए। जुलूस ठहर गया।

दस मिनट में ही लठबन्द सिपाहियों से भरी दो लारियाँ आ पहुँचीं। सिपाही जैसे राज-भक्ति में उन्मत्त हो रहे थे। बड़े साहब का अपमान किया गया था, और बड़े साहब पिता-समान हैं! दोनों लारियाँ दम-भर में खाली हो गईं, और सिपाही लोग लाठियाँ तान-तानकर दौड़े।

लाठियाँ चलीं कि जोश हवा हो गया। जो सबसे ज्यादा चिल्लाते थे, सबसे पहले वही भागे। जो साहसी थे, वे खड़े रहे। कुछ गिर गए, कुछ जख्मी हुए, कुछ ने जान दी!

सारा मार्का आज ही फतह करना था! बड़े साहब का खुला हुक्म

था ! फिर ऐसे शिकार मिल भी कहाँ सकते थे ! बस, आगे की सफ साफ हुई, तो औरतों का जत्था आ पड़ा।

कह सकते हैं कि औरतों ने जुलूस की लाज रख ली। कुछ तो पीछे को सरकीं, बाकी न हिलीं, न डुलीं, न भागीं।

इस दृढ़ता से सिपाही भी दहल गए। कुछ रुक गए, कुछ के हाथ उठे ही रह गए; कुछ काना-फूसी करने लगे।

फिर भी उस दो लारियों की पल्टन में से कुछ वीर राजभक्तों ने हाथ की करामात दिखानी शुरू कर ही दी !

गृहिणी इस जत्थे की अभिनेत्री थी। कुछ देर तो किंकर्तव्य विमूढ़ होकर खड़ी रह गई, तब सहसा दौड़कर उधर चली, जिधर सिपाही औरतों पर लाठी चला रहे थे !

'यही है ! यही है !' उसे देखकर सिपाही चिल्लाया—'यही विष की गाँठ है ! हुसैनअली, इसे लेना !'

हुसैनअली दाँत पीसकर, और दोनों हाथों से लाठी तानकर उसकी तरफ दौड़ा। गृहिणी के माथे पर पसीना आ गया, पर हिम्मत ने साथ न छोड़ा। स्थिर खड़ी रही।

सहसा बगल में कोई औरत चिल्लाई, और झपटकर गृहिणी के आगे आ गई। हुसैनअली की लाठी चल चुकी थी, आकर सीधी औरत के सिर पर बैठी। बेचारी ने 'हाय' भी न की, और गिर पड़ी।

साथ ही तीन-चार आदमी 'लेना-लेना' चिल्लाते हुए पीछे से आए। इनकी जवान 'शेम-शेम' नहीं चिल्ला रही थी, इनके हाथों में थी लाठियाँ।

एक छैल था, दूसरा हलवाई और तीसरा बिरजू।

छैल ने चिल्लाकर कहा—'अरे नामर्दो ! हिन्दुस्तान के मर्द मर नहीं गए हैं ! खबरदार ! अगर औरतों पर हाथ चलाया ! अगर कुछ हिम्मत है, तो आ जाओ आगे !'

सिपाहियों की राज-भक्ति खत्म हो गई, और हुसैनअली और उसके साथी बड़े साहब के हुक्म को भूलकर उल्टे-पाँव भागे।

पर गृहिणी के आगे आने वाली औरत दम तोड़ चुकी थी।

गृहिणी फौरन जमीन पर बैठ गई, और उसकी छाती पर हाथ रखा। सिर फट गया था, और सब समाप्त हो चुका था !

इसी समय बहुत-से आदमी उस जगह आ गए। बंसीलाल भी उन्हीं में थे। एक स्त्री को जमीन पर पड़ी देखकर उन्होंने व्यस्त होकर गृहिणी से पूछा—'ज्यादा चोट तो नहीं लगी ?'

किसी ने कह दिया—'मर गई !'

बंसीलाल ने पूछा—'कौन थी ?'

और भी बहुतों ने पूछा—'कौन थी ?'

गृहिणी ने सिर उठाकर कहा—'स्वर्ग की देवी !'

बिरजू सिर धुन रहा था, और छैल और हलवाई लाठियाँ फेंककर वापस जा रहे थे।

संयोग

१

व्रजमोहन सुल्तान-जिले के एक पटवारी का लड़का था। जब उसने मैट्रिक पास किया, और बाप के धीरज और प्यार का बाँध एकबारगी टूट-पड़ने को हुआ, तो एक दिन वह घर रफू चक्कर हो गया।

बात अलंकार में कह दी गई। आप न समझे हों, तो अचरज नहीं। मतलब ब्याह से था। जाने क्या धुन उस अठारह बरस के लड़के को समाई कि ब्याह से एकदम इनकार कर बैठा। वजह बहुतों ने पूछी, और बहुतों ने जानी। पर सब अलग-अलग पूछा जाता, तो पता लग जाता कि सबको अलग-अलग वजह बताई गई।

एक से तो कहा—'गुलाम देश में ब्याह करना गुनाह है।' एक से कहा—'हर एक नौजवान को देश-हित के लिए जान दे देनी चाहिए।' एक से कहा—'ब्याह करना पतन का कारण है!' एक से यह भी कहा—'किसी मुसलमान स्त्री से ब्याह करूँगा।' पर यह, जान पड़ता है, हँसी में कह दिया गया था; क्योंकि एक से यह भी बताया कि 'बमबाजों की मंडली में शामिल होकर फाँसी चढ़ूँगा।'

इस वैचित्र्य-पूर्ण युग में लड़के का यह हठ देख, वृद्ध पिता बड़े असमंजस में पड़े। लाड़ों में पला था, प्यार से पढ़ाया था, और बड़ी आशा से एक-एक दिन बताया था। माँ छोड़कर मर गई थी, और कोई था नहीं। उम्र काफी बीत चुकी थी, इसलिए फिर बूढ़े ने ब्याह न किया। यानी सारा स्नेह, सारी आशा और वृद्धावस्था के बिछोह के सारे आँसू उसने लड़के पर न्यौछावर कर दिए। अब जब आशा में फूल आया, स्नेह-रस में

पकाव दिखाई दिया, और बिछोह की कसक पर मरहम लगा, तो अकस्मात् यह आघात पाकर बूढ़े का दिल एक बारगी हाहाकार कर उठा !

जैसे उसकी सारी निधि खोई जा रही थी; मुँह बनाकर बूढ़े ने सुबह से शाम तक परेशान होकर घूमना शुरू किया। लड़के से कुछ कहने की हिम्मत न पड़ती थी, इसलिए गली के, मोहल्ले के, कस्बे के, स्कूल के—लड़के सभी साथियों के पास चक्कर लगा आया, और रो-रोकर अपनी कष्ट-कहानी सुना आया।

दया इस पर सबको आ गई, और खर्च चूंकि कुछ होना नहीं था, इसलिए कोई भी इस दया का प्रदर्शन करके अनायास ही बूढ़े की सहानुभूति प्राप्त करने से न चूका। इधर जब ब्रजमोहन पर एकबारगी सब तरफ से बौछार पड़ी, तो एक दिन वह बावला लड़का अकेला घर छोड़कर चल दिया !

२

चलते-चलते दिल्ली पहुँचा, और रेलवे में चालीस रुपए का मुलाजिम हो गया।

एक साफ मोहल्ले में छः रुपए महीने का एक कमरा किराए पर लिया, और मौज से वक्त काटने लगा।

इस लड़के के लिए मैंने जो 'बावला' विशेषण का प्रयोग किया है, वह सोलह आने ठीक है। अठारह बरस का हो गया था, रेखें फूटने लगी थीं, रंग विकसित हो रहा था, बातचीत का ढंग गम्भीर हो गया था, और शरीर बलिष्ट और शानदार था, पर प्रकृति कुछ अजीब तरह की थी। इस अजीबपन का कुछ परिचय तो आपने पाया ही है, बाकी आगे पावेंगे।

समा मन्दे का था, इसलिए चालीस रुपए अकेले आदमी के लिए काफी से ज्यादा थे। उसके खर्च का हिसाब चाहे जो उससे पूछ सकता था। छः रुपए किराया, एक के गेहूँ, तीन का घी, एक का मसाला और एक की दाल। बारह तो यह हुए। एक रुपया कपड़ों की धुलाई, एक का तेल-साबुन, रुपया महीना जूते की औसत पड़ती थी, ज्यादा-से-ज्यादा दो-तीन रुपए दूध वगैरा में जाते थे। दो रुपए और मुतर्फरिक का खर्च लगा लीजिए। इस

तरह कुल बीस रुपए का खर्च था।

बाकी बीस रुपए जो बचते थे, उनका उपयोग भी सुनिए। पाँच रुपए तो पतंग-डोर में खर्च होते थे, और पाँच थिएटर बायस्कोप में। दस रुपए में कभी कपड़े बनवा लेता था, कभी और कुछ सामान खरीद लेता था, और अक्सर बचे हुए रुपयों को गली के बच्चों को मिठाई बाँटने में खर्च कर डालता था।

ड्यूटी से छुट्टी पाकर आता, तो घर में पड़ा रहता, या बागों में, दरिया-किनारे, थियेटर-सिनेमा में वक्त काट देता था। जो दो-एक नए मित्र बन गए थे, और जिन्होंने दुनियादारी सीखी थी, वे उसकी दिन-चर्या सुनते, और अचरज करते, और उसकी लापरवाही और पैसे के अपव्यय पर उसे समझाते भी।

पर व्रजमोहन सबकी सलाह को हँसकर टाल देता। इसी तरह दिन बीत रहे थे।

३

उस दिन इतवार था, और छुट्टी थी। व्रजमोहन सात बजे सोकर उठा। कमीज गले में डाली और घूमने चल दिया।

गर्मी पड़ने लगी थी। सूरज निकल आया था। धूप फैल गई थी। व्रजमोहन छड़ी हिलाता और गुनगुनाता हुआ शहर के बाहर निकल गया। जिस रास्ते पर वह था, वह नई दिल्ली या रायसीने की तरफ जाता था।

यह प्याऊ आई, यह पुल आया, यह 'कनॉट प्लेस' आया, यह हनुमानजी का मन्दिर रहा, और अन्त में वह जंतर-मंतर के पास पहुँचकर रुका।

गोरा चेहरा बश्शाश था। माथे पर धूप की किरणें लोट रही थीं, और 'बावला' व्रजमोहन अपने अतीत और भविष्य से बेखबर, छड़ी हिलाता और गुनगुनाता हुआ, जंतर-मंतर के पास जाकर घास पर लेट गया।

किसी खास बात को लेकर विचार में पड़ जाने की उसकी आदत नहीं थी। जो चीज सामने आई, उसे देखा, उसका भाव मन की आँख के आगे

बँधा, फिर दूसरी चीज देखी, और पिछला भाव और विचार एकदम लुप्त हो गया।

यह जंतर-मंतर है, क्या कारीगरी है ! यह शान्ति-निवास है, क्या गोलाई देकर कटावदार तरीके से बनाया गया है। यह थाना है, बेशुमार रुपया खर्च कर दिया गया है ! वह एसेम्बली-हॉल है, खम्भे कैसे सुन्दर लगते हैं ! ये ठेकेदारों की कोठियाँ हैं, इत्यादि।

व्रजमोहन जब वापस लौटा, तो एक कुत्ता उसके साथ हो लिया।

कह सकते हैं, यहीं से हमारी कहानी शुरू हुई।

४

जाती बार जैसे गया था, आती बार भी वैसे ही आया। वही लापरवाही की चाल, वही छड़ी घुमाना, और वही रास्ते-भर गुनगुनाते आना।

जब घर पहुँचा, तो कुत्ता भूँका, और उसने पीछे फिरकर देखा।

काले रंग का कुत्ता था। मुँह लोमड़ी-जैसा, बदन सुता हुआ और सुडौल, सब तरफ लम्बे-लम्बे रेशम-से बाल, पंजों पर हल्की सफेद रंग की चित्तियाँ, पूँछ जरा-सी, जैसे कुछ हिस्सा काट दिया गया हो, लाल रंग की जीभ बाहर निकाले हाँफ रहा था।

गले में चमड़े का पट्टा था, और पट्टे पर छोटे-से धातु-पत्र पर कुछ अक्षर खुदे हुए थे।

व्रजमोहन पीछे फिरा कि गली का हलवाई और घोसी का लड़का दाँत फाड़कर हँस पड़े—'ओहो ! बाबू साहब, कुत्ता-कुत्ता।'

बावला व्रजमोहन शर्मा-सा गया। लौटकर कुत्ते के पास पहुँचा। कुत्ता स्नेहपूर्ण नेत्रों से उसे ताकने लगा।

घोसी का लड़का बोला—'कहिए बाबूजी, इसे कहाँ से पकड़ लाए ?'

हलवाई भी ताली बजाकर बोल उठा—'बाबूजी, कुत्ता तो बड़ा लाजवाब है !'

व्रजमोहन लाज से गड़ गया। कुछ देर चुप खड़ा रहा, बोला—'लाजवाब है तो तुम ले लो !'

कहकर वह झटपट घर में घुस गया और नहा-धोकर छुट्टी का पूर्ण सदुपयोग करने के लिए बाज़ार चल दिया।

घूम-घामकर बारह बजे लौटा। उस दिन बेतरह आलस ने सता रखा था और एक दूकान पर ताजे-ताजे पराठे सिक रहे थे, इसलिए वहीं बैठ गया और पेट भरकर उठा। लौटकर देखा, घर के आगे भीड़ इकट्ठी हो रही है। हलवाई और घोसी का लड़का भी भीड़ में खड़े थे। कोई मदारी का तमाशा हो रहा था क्या···। व्रजमोहन कोई स्पष्ट कल्पना न कर सका कि हलवाई और घोसी के लड़के की नजर एक साथ उस पर पड़ गई और दोनों एक साथ बोल उठे—'लो, बाबूजी खुद ही आ गए।'

सब पलट पड़े और बीच में रास्ता हुआ, तो व्रजमोहन ने देखा, कुत्ता···।

हाँ, सुबह जो कुत्ता रायसीने से साथ चला आया था, वही इस वक्त भीड़ के बीच में बैठा तमाशा बना हुआ था।

जब इतने आदमियों ने एक साथ उसकी तरफ देखा तो व्रजमोहन के संकोच का क्या ठिकाना! चेहरे पर हवाइयाँ-सी उड़ने लगीं और गला रुक गया।

घोसी के लड़के ने गले के ताबीज को अँगूठे और तर्जनी से मसलते हुए कहा—'अजी बाबूजी, यह कुत्ता···।'

हलवाई चिन्ता-समुद्र में डूबते हुए सिर खुजाकर और माथा झुकाकर बीच ही में बोला—'अजी बाबूजी, इस कुत्ते ने···'

अब व्रजमोहन को बोलना पड़ा—'क्यों हुआ?'

घोसी का लड़का हँसकर बोला—'अजी, आप कहाँ से ले आए इसे? किसका है यह?'

हलवाई का माथा ऊपर न उठा, न बोल निकला।

व्रजमोहन व्यग्र होकर बोला—'कहाँ से ले आया? लाया तो कहीं से नहीं!'

घोसी का लड़का भीड़ के आदमियों की तरफ सैन देकर हँस पड़ा। हलाई का माथा अब भी गड़ा रहा।

व्रजमोहन इस संकट से घबरा गया। हलवाई से बोला—'क्या मामला है,जी?'

अब हलवाई ने सिर को हरकत दी और जैसे कुएँ में बैठा हो, इस

तरह बोला—'जी, बाबूजी, मैं तो समझा था, कुत्ता आपका है।'

'मेरा ? वाह भई, मेरा कहाँ से आया ?'

'जी हाँ, पीछे मालूम हुआ। एक आदमी था, कहने लगा—'यह तो रायसीने के एक बाबू साहब का कुत्ता है; यहाँ कैसे आ गया ?' मैंने आपका नाम लिया, बाबूजी, वह तो सिर हो गया। कहने लगा—'तुम बहाना बनाते हो; तुम इसे चुराकर लाए हो। मैं अभी जाकर पुलिस को खबर देता हूँ !' फिर उसने इसके गले को पट्टा और नम्बर दिखाया।'

घोसी के लड़के ने टोककर कहा—'अरे साहब, वह तो मेरा शेर सिर पर चढ़ गया। जब मैंने कहा कि मेरे सामने कुत्ता बाबू साहब के साथ आया था, उन्होंने खरीद लिया होगा, तो साहब, वह तो मेरे भी पीछे पड़ गया ! बोला—'अच्छा बे, तेरी भी खबर ली जायेगी।' मैंने कहा—'भाई, मेरे ऊपर किस बात का नजला है?' मगर साहब, वह भला किसकी सुनता है, वह तो जैसे मरने-मारने का इरादा करके आया था !'

किसी ने भीड़ में से कहा—'अरे भाई, तुम क्या जानो, वह तो सी० आई० डी० का आदमी था।'

हलवाई मानो सारे नाटक का सूत्रधार बनकर बोला—'जी हाँ, मुझसे खुद उसी ने कह दिया था। धीरे से बोला—'देखो मुन्ना, मैं खुफिया का आदमी हूँ। याद रखना, जरा चीं-चपड़ की तो बँधवा दूँगा !' साहब, उसे खुश करने के लिए मुझे तो अपनी दो दिन की कमाई भेंट करनी पड़ेगी।' हूँ ! साले के कट-कटके निकलेगी !'

हलवाई ने ऐसा मुँह बना लिया, जैसे अभी रो पड़ेगा।

घोसी के लड़के ने उँगली से तावीज हिलाते हुए कहा—'अरे तो, घबराता क्यों है, वह तो बाबूजी से मिल ही जायेगी।'

बाबूजी ने चौंककर कहा—'क्या ? क्या है ?'

हलवाई बोला—'साहब, इस कुत्ते को…'

'हाँ।'

'इसे आप ले जाइए, मैंने भर पाया।'

घोसी का लड़का बोला—'और जो कुछ इसका खर्च हुआ है, वह भी

दे दीजिए। बाबूजी, आपने तो कुछ मुश्किल नहीं होगा, हम लोग गरीब आदमी है।'

कहता-कहता वह अपनी अयाचित वकालत के बदले में हलवाई के मुँह पर एहसान का भाव देखने के लिए उसकी तरफ घूमा।

व्रजमोहन ने परेशान होकर कहा—'अरे तो ऐसा खर्च क्या हो गया!'

चेहरे का सन्तोष और हास्य छिपाने के लिए हलवाई ने सिर झुका लिया, और बोला—'अजी; कुछ नहीं बाबूजी, खर्च-वर्च तो ऐसा कुछ नहीं हुआ!'

'आखिर? कुछ तो?'

'अजी, कुछ हो भी। यह (घोसी का लड़का) तो पागल है!'

'बोलो, बोलो, क्या खर्च हुआ है, देर होती है।'

हलवाई ने जैसे बड़े सङ्कोच में डूबकर कहा—अठन्नी!'

व्रजमोहन ने झट अठन्नी निकालकर फेंक दी और कुत्ते का पट्टा पकड़कर घर में घुसा।

५

कुत्ता हाँफ रहा था। जीभ बाहर निकली हुई थी। आँखों में आँसू भरे हुए थे। पेट चिपक गया था। भीतर आकर व्रजमोहन दाँत पीसकर बोला—'ओह! जालिमों ने गरीब को भूखा ही मार डाला था!' तब वह हलवाई से दूध-मिठाई लाया और सकोरे में भिगोकर कुत्ते के आगे रक्खी। वह तो देखते ही लपका और भरपूर तेजी से दूध-मिठाई का सकोरा खाली करना शुरू कर दिया।

जब वह पेट-पूजा में व्यस्त था, तो व्रजमोहन ध्यान से उसके पट्टे को देख रहा था। सफेद निकिल का छोटा-सा टुकड़ा पट्टे में बँधा हुआ था। अंग्रेजी अक्षरों में 'डी० एम० सी० 84' उस पर खुदा हुआ था। मतलब हुआ—दिल्ली म्युनिसिपल कमेटी। व्रजमोहन ने सोचा, जरूर कमेटी में इसके मालिक का पता मिल जाएगा। वहीं जाकर पूछने से पता चलेगा।

पर इतवार का दिन था। म्युनिसिपैलिटी का दफ्तर बन्द था। क्या किया जाय ? कुत्ता है तो खूबसूरत, क्यों न अपने पास ही रहने दे ? पर न, कमेटी में नम्बर लिखा हुआ है, इसका मालिक पुलिस में रिपोर्ट करेगा, अखबारों में हुलिया निकालेगा। कुत्ता कीमती है, मुमकिन है, खोज-पूछ होने लगे। बहुत-से आदमी इसे देख चुके और फिर वह खुफिया पुलिस का आदमी···। न, ऐसा नहीं हो सकता। और फिर करना भी क्या है ? कौन उसकी सेवा-टहल करेगा ? कौन उसे हवा खिलाने ले जायेगा ? कौन उसके खाने-पीने की चिंता रखेगा ?

पर किया क्या जाय ? कमेटी का दफ्तर तो आज बन्द है। क्या जाने आज ही इसका मालिक रिपोर्ट कर दे ! और, पुलिस को पता चल जाय ! फिर तो लेने के देने पड़ जाएँगे, यहाँ परदेस में भला कौन मेरा जामिन बनेगा ?

एक बार जी में आई, किस झंझट में पड़े जी, जाकर बाजार में छोड़ दे। क्या मतलब है किसी से, चाहे जहाँ जाय।

पर फिर पुलिस···। अगर पुलिस में रिपोर्ट की गई, और तयकीकात हुई, तो पता लगाना क्या दुश्वर है ? आखिर इतने आदमियों ने देखा है। सी० आई० डी० का आदमी···। फिर क्या होगा ? कौन सुनेगा ? सभी समझेंगे, बाबू साहब ने किसी के हाथ वेच दिया है। जानवर कीमती है। सहज ही में १००-५० रुपये मिल सकते हैं। चालीस रुपये के नौकर की नीयत डुलाने के लिए १००-५० रुपए की रकम मामूली-से ज्यादा है।

कुत्ता दूध-मिठाई खत्म करके सकोरा चाट रहा था। व्रजमोहन तब तक कोई उपाय स्थिर न कर पाया।

सहसा लठ हाथ में लिए घोसी का लड़का हँसता हुआ घर में आ गया। आते ही कुत्ते की तरफ देखकर बोला—'ओहो! सब चट कर गया साला'! क्यों बे, आया मिठाई में कुछ मजा ! साले की आँतें कुलमुला उठी होंगी ! बाबूजी, यह तो अच्छा ये वबाल बँधा जान को, एक रुपये पर बीत गई। अठन्नी हलवाई को दे दी, अठन्नी का···'

व्रजमोहन ने कुछ जवाब न दिया। बातूनी घोसी के लड़के की बात

उसने पूरी सुनी भी, इसमें सन्देह है।

उसने फिर कहा—'तो बाबूजी, इसे अपने पास ही रखोगे ?'

ब्रजमोहन ने सिर उठाकर कहा—'अपने पास रखकर क्या करूँगा ?'

'अच्छा है, चौकीदारी करेगा।'

'न भाई, मेरे पास ऐसा कौन खजाना धरा है, जिसकी चौकादारी की जरूरत है ! यहाँ तो ऐसा कोई आदमी भी नहीं है, जो इसकी सेवा-टहल कर सके।'

'फिर ? क्या करोगे !'

'यही सोच रहा हूँ।' ब्रजमोहन ने परेशान होकर जवाब दिया।

'सोचने की क्या बात है, जब आप रखना नहीं चाहते, तो जमा कर आइए।'

'जमा करा आऊँ, कहाँ ? कमेटी तो आज बन्द है···।'

'क्यों ? ओहो ! याद आया, आज इतवार है।'

'हाँ, अब इसी चक्कर में हूँ। करूँ, तो क्या करूँ क्या, कहीं ऐसा न हो कि इसका मालिक पुलिस में खबर कर दे, और तहकीकात होने लगे। अगर ऐसा हुआ, तो फिजूल का फजीता हो जायेगा।'

'तो क्यों, फजीते की क्या बात है, आपने सुसरे की चोरी थोड़े ही की है !'

'भाई, यह जमाना ऐसा ही है; साह को चोर बना दिया जाता है।'

'तो आप चोर बनें ही क्यों; जाकर जमा करा आइए।'

'जमा कहाँ कराऊँ ? कमेटी तो···'

'कमेटी में नहीं, थाने में···'

पलक मारते गिरह-सी खुल गई। ब्रजमोहन उछलकर बोला—'ठीक है !'

और दौड़कर उसने खूँटी से कमीज-टोपी उतार ली।

'चल भई कुत्ते, हमारा-तेरा इतना ही संस्कार था !' ब्रजमोहन ने गद्गद कंठ से कहा, और पट्टे में रस्सी बाँधकर कुत्ते के साथ थाने की तरफ चला।

६

थाने पर।

बावले व्रजमोहन के लिए यह अपने किस्म का पहला मौका था। एक लम्बी-चौड़ी चौकी पर डेस्क धरे दो मुंशी महाशय बैठे हुए थे। जैसे जहाज के भंगी भी मल्लाह होते हैं, वैसे ही ये मुन्शी भी बे-वर्दी के सिपाही थे। हुक्कों की नाल ओठों पर, स्याही सनी खाकी कमीज तन पर और चारखाने का तहमद टाँगों में। एक मुन्शी की दाढ़ी-मूँछ शून्य थीं, एक की पतली मूँछें और छतनारी दाढ़ी थी।

चौकी पर एक तरफ चार-पाँच आदमी बैठे रिपोर्ट लिखवा रहे थे। हाथ में डण्डा थामे दो-एक खुफिया के आदमी इधर-उधर घूम रहे थे। एक बा-वर्दी दारोगा या नायब-दारोगा साहब कुर्सी पर बैठे टेलीफोन कर रहे थे।

व्रजमोहन ने सारे सीन को देखा, और कहा—'हुजूर···!'

किसी को सुनने की फुर्सत नहीं हुई। सारा ध्यान जैसे रिपोर्ट लिखने की तरफ लगा हुआ था।

व्रजमोहन कुछ देर चुप-चाप खड़ा रहा, फिर साहस करके बोला—'हुजूर···!'

इस बार सिर्फ़ रिपोर्ट लिखाने वालों में से दो-एक ने पलटकर देखा, पर किसी ने फिर भी कान न दिया।

व्रजमोहन के हृदय में धैर्य की जो तलछट बची, उस सबको बटोर कर उसने कहा—'जनाबआली, जरा···'

अब एक मुन्शी महाशय ने जैसे खूब व्यस्त और क्षुब्ध होकर कहा—'च! च! क्या है भई?'

'जनाब यह कुत्ता···'

दूसरे मुन्शी ने बीच में ही टोक दिया—'देखते नहीं, रिपोर्ट लिखी जा रही है, पहले इसे खत्म होने दो।···क्या कहें, लोगों की अकल पर पत्थर पड़ जाते हैं।···हाँ, साहब, मुन्शी जी,···इस पर सीसराम ने रहमत को ईंट से जर्दकोब किया···आगे?'

मुन्शीजी बोले—'ईंट से नहीं, ईंटों से!'

रिपोर्ट जब लिखी जा चुकी, पढ़ी जा चुकी, दस्तखत की जा चुकी, तो मुन्शी लोग हुक्का पीने लगे।

व्रजमोहन ने डरते कहा—'जनाब को कुछ तकलीफ···'

मुन्शी ने दाढ़ी में तर्जनी उलझाकर कहा—'क्यों, क्या है!'

'जी, यह कुत्ता है।'

बे-मूंछें मुन्शी ने तमककर कहा—'अरे भाई, कुत्ते के लिए नहीं पूछा गया। मुन्शीजी फर्माते हैं, किस लिए आना हुआ?'

'जी; वही तो कहता हूँ।' व्रजमोहन ने कहा—'आप लोग तो मुँह से बात ही नहीं निकलने देते।'

खुफिया का एक दूत भी पास आ बैठा था। मुस्कराकर बोला—'बाबू साहब, यह तो थाना है, माफ कीजिएगा, यहाँ तो इसी तरह का बर्तावा होता है।'

व्रजमोहन ने साहस पाकर कहा—'जी, बर्ताव का कुछ मलाल नहीं मेरी अर्ज यह है कि जो कुछ मैं कहने आया हूँ, कम-से-कम उसे तो धीरज के साथ सुन लिया जाय!'

वह बोला—'मालूम होता है, आप पहले-पहल थाने में तशरीफ लाये हैं। माफ कीजिएगा, आपकी बातों से ऐसा ही जाहिर होता है।'

'जी हाँ, आया तो पहिले ही हूँ।'

उसने दाँत निकालकर कहा—'जी, मैंने तो पहले ही अर्ज किया था। माफ···'

दढ़ियल मुन्शी ने कहा—'अच्छा, खैर आप अपना मतलब कहिए। तो यह कुत्ता···'

'जी, मैं सुबह जन्तर-मन्तर की तरफ सैर करने गया था, आती दफे रास्ते में यह मेरे साथ हो लिया।'

'फिर?'

'मैंने यह मुनासिब समझा कि आपको इत्तिला देकर मैं इसे थाने में सौंप दूँ।'

'थाने में?'

'जी हाँ, इसके गले में म्युनिसिपैलिटी का नम्बर मौजूद है, पर कमेटी

का दफ्तर आज बन्द है, इसलिए आपको तकलीफ देने पर मजबूर हुआ।'

'आपका इस्म-शरीफ ?'

'ब्रजमोहन।'

'वल्दियत ?'

ब्रजमोहन ने झिझककर कहा—'इसकी क्या जरूरत है ?'

'जरूरत है; कहाँ के रहने वाले हैं ?'

'अब तो यहीं रहता हूँ।'

'वतन कहाँ है ?'

ब्रजमोहन घबराकर बोला—'यह तो बताना नहीं चाहता।'

'वाह साहब ! आप मजाक करने तो नहीं आए ?' मुन्शी का मुँह बन गया। बे-मूँछ का भाव भी साथ-ही-साथ बिगड़ गया। जैसे किसी बेतार के तार का सम्बन्ध हो।

खुफिया के दूत की आँखें चमक उठीं। उसने गौर से ब्रजमोहन को ताका।

ब्रजमोहन बोला—'साहब, इसमें मजाक की क्या बात है, मैं किसी मुकद्दमे में गवाह तो हूँ नहीं, जो मुझसे वे सब बातें पूछी जायें।'

मुन्शीजी बोले—'अजी जनाब, बगैर पते और वल्दियत के तो हम लोग बात भी नहीं करते, यह तो कुत्ते की बात है...।'

कहते-कहते उन्होंने कुत्ते की तरफ देखा।

बे-मूँछे मुन्शी ने बरबराकर कहा—'चले आते हैं, कहीं-कहीं से; अक्ल का नामो-निशान नहीं।'

खुफिया के दूत ने चमकते नेत्र स्थिर करके कहा—'जी, वल्दियत-बगैरा तो, माफ कीजिएगा, आपको बतानी ही होगी। न-जाने कल को क्या जरूरत पड़ जाय !'

ब्रजमोहन बोला—'वाह ! अच्छी रही, मैंने तो इनाम का काम किया है और आप मुझे इस तरह तङ्ग करने लगे !'

'तङ्ग ! तङ्ग !' दढ़ियल मुंशीजी सहसा क्रुद्ध होकर बोले—'तङ्ग क्या किया जी तुम्हें ? लड़ने आए हो ?'

दूसरे मुंशी बोले—'वाहजी वाह ! ऐसे ही लोग तो पुलिस के महकमे को बदनाम करते हैं, बताओ, क्या तंग हमने इसे किया है ?'

दारोगाजी टेलीफोन रखकर हँसते हुए कमरे से बाहर हो गए। रिपोर्ट लिखने वाले आँखों में मलामत भरकर व्रजमोहन की तरफ देखने लगे। खुफिया का भूत घूरता हुआ बोला—'बाबू साहब, आपको ऐसी कच्ची बात मुँह से नहीं निकालनी चाहिए। यह पुलिस का मामला है। यहाँ हरएक बात की खूब जाँच-पड़ताल की जाती है। माफ कीजिएगा, यहाँ तो सगे बाप का एतबार करना भी गुनाह है।'

व्रजमोहन कुछ हत-बुद्धि होकर बोला—'तो इसमें ऐतबार की क्या बात है ? मैं कोई चोर-उचक्का थोड़े ही हूँ ?'

'यह कौन जानता है ? आपके माथे पर लिखा हुआ है कि आप चोर उचक्के नहीं हैं ?' दढ़ियल मुंशीजी ने रौब से कहा।

'लेकिन इस वक्त तो कोई चोरी-वगैरा का सवाल नहीं, मैं तो एक कुत्ता आपको सौंपने आया हूँ; इससे तो मेरे साहपन का एतबार आपको हो जाना चाहिए।'

'जी हाँ, हमने जमाना देखा है; ऐसे दर्जनों केस इन आँखों के आगे से गुजरे हैं।'

छोटे मुंशी ने एक बार बड़े मुंशी को देखा और दूसरी बार ब्रजमोहन को। पहली बार नजर में गौरव और प्रशंसा का भाव था, दूसरी बार व्यंग्य और क्षुद्रता का।

व्रजमोहन ने अवरुद्ध कण्ठ से कहा—'तो इसमें कौन-से केस की सम्भावना आपको नजर पड़ गई ?'

'बताऊँ !'

'हाँ।'

'क्या यह मुमकिन नहीं हो सकता कि आपने कहीं से यह कुत्ता उड़ा लिया हो···'

'लेकिन—'

'ठहरिए, यह कुत्ता कहीं से उड़ा लिया हो। पीछे गले में पट्टा देखकर आप घबरा गए हों और बचाव के लिए यहाँ चले आए हों।'

'क्या कयास है !' ब्रजमोहन झल्लाकर बोला—'अजी जनाब, आदमी की शकल से अच्छे-बुरे की तमीज हो जाती है।'

'जी माफ कीजिएगा, खुफिया के दूत ने कहा—'यह बात गलत है; शकल देखकर अन्दाजा लगाना मुश्किल है।'

छोटा मुंशी बरबरा उठा।

बड़े मुंशी के मुँह पर सन्तोष की रेख नजर पड़ी। बोले—'मैं यह नहीं कहता कि आपने ऐसा किया ही है। मेरा मतलब यह है कि ऐसा हो सकता है। अक्सर ऐसा भी हो जाता है कि कोई आदमी किसी का खून कर आता है और फौरन् थाने में आकर किसी बहाने से अपनी हाजिरी लिखा देता है। समझे आप? कयास ही तो है।'

व्रजमोहन इस तर्क के जवाब में कुछ न बोल सका। मुंशी ने विजय-गर्व से खुश होकर कश खींचा और फिर कलम उठाकर बोले—'हाँ, तो क्या नाम बताया, व्रजमोहन?'

छोटे मुंशी ने भी उसी दम कलम उठा ली।

'नाम व्रजमोहन, वल्दियत?' मुंशी ने दूसरा प्रश्न किया।

'जी, यह मैं नहीं बता सकता।'

मुंशीजी ने कलम फेंक दी और कहा—'तो फिर बेकार है!'

मुंशी की कलम भी अलग जा पड़ी।

व्रजमोहन ने तङ्ग आकर कहा—'तो इस कुत्ते को आप न लेंगे?'

'कुत्ते को? कुत्ते को तो हम ले ही नहीं सकते!'

'फिर?'

'अगर आप ठीक-ठीक जवाब देते तो रिपोर्ट लिख ली जाती, कुत्ता लेकर हम क्या करते? जवाब दें तो रिपोर्ट अब भी…'

'तो वल्दियत और वतन का पता तो मैं नहीं बता सकता; नकली कहिए, तो बता दूँ।'

मुंशीजी हँसकर बोले—'नया जुर्म सिर पर लेना चाहते हो!'

व्रजमोहन बोला—'तो फिर मैं क्या करूँ?'

छोटे मुंशी ने कहा—'इमली के पत्ते पर दण्ड पेलो।'

व्रजमोहन ने नाराज होकर कहा—'तो मुंशीजी, मैं जाऊँ?'

'जा सकते हैं।'

'इस···कुत्ते को···?'

'साथ ही ले जाइए।'

'तो इसे सड़क पर छोड़ दूँ ?'

'हमारी तरफ से कुएँ में फेंक दीजिए।'

'बहुत अच्छा, सलाम !'

कुत्ते की रस्सी पकड़कर व्रजमोहन चल दिया।

बाहर आकर व्रजमोहन ने कहा—'धत्तेरी पुलिस की ! ···चल भई कुत्ते, आज का दिन तेरे नाम पर, चल, रायसीने में तेरे मालिक की खोज करूँगा।'

कुत्ता क्या समझता और क्या बोलता ?

७

तेज दुपहरी थी, लोग तपे जा रहे थे और बाबला व्रजमोहन कुत्ते की रस्सी हाथ में थामे रायसीने की तरफ चला जा रहा था।

यह प्याऊ आई, यह पुल आया, यह कनॉट पैलेस, वह हनुमानजी का मन्दिर रहा, यह सामने जन्तर-मन्तर है, यह हनुमान रोड—जिस पर पंजाबी ठेकेदारों की पुण्य की कमाई की प्रतिमूर्ति, आलीशान इमारतें खड़ी थीं।

कुत्ते की रस्सी पकड़े व्रजमोहन इसी सड़क पर चल दिया। जैसे उसकी तपस्या पर भगवान् प्रसन्न हो गए। थोड़ी दूर आगे बढ़ते ही उसने देखा, एक औरत बरामदे में खड़ी गौर से कुत्ते की तरफ देख रही है। व्रजमोहन क्षण-भर को ठिठका कि औरत जोर से बोल उठी—'अरे भाई, यह हमारा जैक···'

व्रजमोहन कुत्ते को लेकर उधर ही चला !

शक्ल-सूरत से औरत दासी जान पड़ती थी। दौड़ती हुई आई और कम्पाउण्ड का सलाखदार दरवाजा खोलकर बेतहाशा कुत्ते पर आ पड़ी। गोद में लेकर उसे चुमकारते हुए बोली—'अरे रे, जैक ! तू कहाँ चला गया था ? अरे, मैं तो तड़प गई ! अरे, बेटा, कहाँ रास्ता भूल गया था ?'

कहकर वह व्रजमोहन से बिना एक शब्द कहे, जैक को गोद में चिपटाकर भीतर भाग गई। दरवाजे के बराबर एक तख्ती लटकी हुई थी, जिस पर अंग्रेजी में लिखा था, डॉक्टर जी० एस० भटनागर। व्रजमोहन कुछ देर चुपचाप धूप में खड़ा इस तख्ती को देखता रहा, फिर लम्बी साँस लेकर वापस लौटा।

पर अभी कुछ ही कदम गया था कि पीछे से आवाज आई—'बाबूजी, अजी ओ बाबूजी!'

व्रजमोहन ने पलटकर देखा, वही दासी किवाड़ पकड़े खड़ी है और जोर-जोर से आवाज दे रही है।

उसके पास पहुँचा, तो बोली—'आप तो चल ही दिये!'

व्रजमोहन ने धीरे से कहा—'और क्या करता?'

'वाह! आपको तो सरकार बुला रहे हैं।'

'कौन सरकार?'

'बड़े बाबूजी।'

व्रजमोहन के लिए 'सरकार' और 'बड़े बाबूजी' दोनों ही अपरिचित थे। तो भी दो बातें वह समझ गया। एक यह कि उन्होंने बुलाया है, जिनका कुत्ता है। दूसरी यह कि उनका लड़का इतना वयस्क है, जो 'बाबूजी' या 'छोटे बाबूजी' कहलाने का अधिकारी हो गया है।

बोले—'मैं क्या करूँगा चलकर? यद्यपि चलना चाहते थे। और किसी लिए न सही, इसीलिए कि प्यास बड़े जोर की लगी थी।

दासी बोली—'वाह बाबू साहब, सरकार ने बुलाया है, तो क्यों नहीं चलते आप?'

इतने में सरकार खुद ही बरामदे में आ गए। व्रजमोहन ने उन्हें देखा। उन्होंने झट दोनों हाथ जोड़कर व्रजमोहन को प्रणाम किया और कहा—'थैंक्यू वेरी मच, बाबू साहब, आइये—भीतर पधारिये।'

अब व्रजमोहन रुक न सके और शर्माते हुए भीतर घुसे।

सरकार का शरीर साँवला, मोटा और कुछ बेढंगा था। ऊपर के तीन दाँत नकली थे। पतली धोती तन पर थी, जो तोंद के कारण ऊँची हो गई थी। धोती का आधा हिस्सा उन्होंने कमर पर मोड़ रक्खा था। गले में एक

सोने का लॉकेट पड़ा हुआ था। चेहरा स्नेहपूर्ण था और आँखों में भय, उद्वेग और चिन्ता का भाव था। सिर के आधे बाल उड़ गए थे। जो बच गए थे, वे बिल्कुल सफेद थे।

व्रजमोहन से हाथ मिलाकर बोले —'आपकी बड़ी मेहरबान हुई बाबू साहब, मैं इस कुत्ते के लिए बड़ा चिन्तित था। आइए, भीतर आइये।'

बड़े बाबू या सरकार के साथ व्रजमोहन भीतर घुसा।

८

मकान खूब लम्बा-चौड़ा था। बड़े-बड़े कमरे थे। फर्नीचर रईसाना था। कार्पेट कीमती था। इधर-उधर कमरे थे और बीच में बरामदा। व्रजमोहन को साथ लिए हुए बढ़े बाबू इसी बरामदे में से गुजरने लगे।

दो के बाद तीसरा कमरा आया। सहसा व्रजमोहन के कान में सिसकी ले-लेकर किसी के रोने की आवाज पड़ी। व्रजमोहन चौंक पड़ा। दाएँ कमरे का दरवाजा बन्द था। किवाड़ों के ऊपरी हिस्से में शीशे लगे हुए थे। व्रजमोहन ने देखा, भीतर पलङ्ग पर कोई स्त्री औंधी पड़ी हिचक-हिचककर रो रही है। सिर उसका खुला हुआ था, हाथ इधर-उधर पड़े थे और पिंडलियाँ उघरी हुई थीं।

रोने की आवाज बड़े बाबू के कान में भी पड़ी। उन्होंने व्रजमोहन को कमरे में झाँकते देखा, तो झट उसका हाथ पकड़ लिया और बोले—'कहिए, यह जगह आपको पसन्द आती है?'

व्रजमोहन ने चौंककर कहा—'जी हाँ, आब-हवा के लिहाज से तो अच्छी ही है।'

'मैं तो समझता हूँ, बहुत अच्छी है। जरा गर्मियों की तकलीफ देख लीजिए, वरना जाड़े-बरसात में तो आराम-ही-आराम है।'

व्रजमोहन ने कुछ जवाब न दिया। उसका तो सारा ध्यान उस रोती हुई औरत की तरफ लग गया था, जिसके गोरे-गोरे पैर और लच्छेदार बाल तथा गोल-गोल हाथ थे।

बड़े बाबू फिर बोले—'बात यह है कि बरसात में तो सब तरफ हरियाली दिखाई देती है; घूमने-फिरने में बड़ा आनन्द आता है। जाड़ों में

'गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया' के दफ्तर आ जाते हैं; खूब रौनक रहती है।'

व्रजमोहन ने तब भी कुछ जवाब न दिया, या कहें, तब भी कुछ न सुना। वह गोरी पिंडलियों वाली, गोल हाथों वाली, 'लच्छेदार बालों वाली···क्यों रोती थी? वह कौन थी?

बड़े बाबू ने एक कमरे में घुसते हुए कहा—'समझे आप?'

व्रजमोहन तो खाक भी न समझा था, क्या जवाब देता? हाँ, इस सवाल ने उसका ध्यान अवश्य भंग कर दिया। चिहुँककर बोला—'जी क्या कहा?'

बड़े बाबू एक ऐसे कमरे में आकर बैठे, जिसमें गद्देदार कुर्सियाँ थीं, जिसके दरवाजों पर खस के पर्दे लगे हुए थे और जिसकी छत में बिजली का पंखा लटक रहा था।

जाते ही बड़े बाबू ने मेज पर रक्खी हुई घण्टी बजाई। उसी दम बगल का दरवाजा खुला और साथ ही कमरा प्रकाश से भर उठा। व्रजमोहन ने उधर देखा, सामने ही एक खुला सहन था। बीचों-बीच छोटा-सा चँदोवा तना हुआ था, उसके नीचे मढ़ा बना हुआ था और दो-एक नौकर-दासी चुपचाप इधर-उधर घूम रहे थे।

व्रजमोहन चौंक पड़ा। क्या किसी की शादी है?

उस लच्छेदार बालों वाली औरत के विषय में व्रजमोहन ने अभी-अभी एक कल्पना स्थिर की थी। शायद बड़े बाबू की स्त्री हो। शायद दुहेज या तिहेज हो। शायद किसी मानसिक क्लेश से बिलख रही हो।

पर इस मढ़े को देखकर हठात् उसकी कल्पना बदल गई। शायद वह बड़े बाबू की लड़की हो। शायद उसी का ब्याह होने वाला हो। शायद रो···पर रो क्यों रही है? घर में ब्याह की-सी तैयारी क्यों नहीं हैं? कोई स्त्री-पुरुष मेहमान क्यों नहीं है? दावत-बगैरा का इन्तजाम···

बड़े बाबू ने नौकर को हुक्म दिया—'पंखा खोल दो।'

पंखा खुल गया और नौकर जाने लगा, तो व्रजमोहन बोला—'तकलीफ न हो तो थोड़ा पानी मँगाइये।'

'ओहो! भूल गया, माफ करें।' बड़े बाबू ने एकदम गिड़गिड़ाकर मारवाड़ियों का-सा मुँह बना लिया और नौकर की तरफ फिरकर कहा—

'लाओ भई, दो गलासों में शर्बत ले आओ।'

'जी बस, पानी मँगा लीजिए; शर्बत नहीं।'

बड़े बाबू ने स्नेहपूर्ण स्वर में कहा—'वाह! फीका पानी क्या पीजिएगा।'

नौकर गया तो वह बोले—'माफ करना, याद न रही, आज कुछ व्यस्त हूँ।'

व्रजमोहन ने मढ़े की तरफ ताककर कहा—'मालूम होता है···'

'जी हाँ' बड़े बाबू टोककर बोले—'आज लड़की की शादी है। मैं इस मामले में बहुत ही संक्षेप से काम ले रहा हूँ, तो भी काफी चिन्ता सिर पर आ पड़ी है। क्या बताऊँ साहब···'

व्रजमोहन बोला—'हाँ, संक्षेप तो आपने काफी बरता है, अगर कोई यह मढ़ा न देखे तो कह ही नहीं सकता कि इस मकान में शादी होने वाली है। और···कब बताई आपने ? आज···?'

'जी हाँ, आज ही शाम को।'

'लीजिए, यह और भी अचरज की बात है। आज शाम को शादी होगी, और घर में चिड़िया बोलने तक की आवाज नहीं आती।'

बड़े बाबू कुछ सिटपिटा-से गए। आँखों में भय का भाव दिखाई दिया। बोले—'जी हाँ, ऐसी ही शादी करना चाहता हूँ।···हाँ, जैक आपको कहाँ मिला ?'

'जी, सुबह मैं इधर घूमने आया था, तो साथ हो लिया। कमेटी का दफ्तर आज बन्द था, इसलिए थाने में दाखिल करने गया। जब उन लोगों ने इन्कार कर दिया, तो लेकर इधर चला आया।'

'आपने बड़ी मेहरबानी की। आप काम क्या करते हैं ?'

'मैं ? रेलवे में नौकर हूँ।'

'आपने बड़ी तकलीफ की। इस दोपहरी में···कहिए, आप सिगरेट पीते हैं ?'

'जी नहीं।' व्रजमोहन ने कहा—'आप क्या शहर में प्रैक्टिस करते हैं ?'

'नहीं जी, प्रैक्टिस छोड़े तो मुद्दत हुई; कलकत्ते में करता था। अब तो

शरीर आराम माँगता है। जवानी में बेहद काम करने का यह कुफल निकला कि पूरे चालीस का हुआ नहीं, और बुढ़ापे ने आ दबाया। फिर मानसिक कष्ट भी काफी हुआ। जवानी में स्त्री का बिछोड़ हो गया। एक लड़का, एक लड़की छोड़कर मरी थी, इसलिए उन्हीं दोनों में मैंने लगाया। अब तो बरस दिन से यहाँ रहकर जिन्दगी के दिन काटता हूँ ? बड़ी-बड़ी लम्बी साँसें लेकर एक ही बार में सब-कुछ कह गए।

व्रजमोहन को एक बार में बहुत-सी बातें मालूम हो गईं। कुछ देर रुककर उसने एक बात जहन में बैठाई। फिर बोला—'साहबजादे क्या करते हैं ?'

'कलकत्ते से पिछले साल एम० एस-सी० पास किया था। अब मेरे साथ ही रहता है। मैंने अब इरादा किया, ब्याह कर दूँ, तो न-जाने उसे क्या धुन समाई है कि ब्याह ही नहीं करता। कहता है—'एक बार रूस की सैर कर आऊँ; उसके बाद देखा जाएगा।' अब आप ही बताइए, मैं कैसे उसे इजाजत दे सकता हूँ ? अकेला लड़का ! भला कैसे रूस चला जाने दूँ ? मेरे शरीर का तो सत्व जल चुका है; यह जो आप मोटाई देखते हैं, यह तो छिलका-ही-छिलका है। उधर वह जाय रूस, और इधर मैं खतम हो जाऊँ ! बस, इसी पर मामला रुका हुआ है।'

इस अपरिचित एम० एस-सी० पास किए हुए युवक की तरफ व्रज-मोहन के मन में एकाएक श्रद्धा और उत्सुकता का भाव पैदा हो गया। बोला—'तो जाने दीजिए रूस ! हर्ज क्या है ? आप क्यों उनके उत्साह को दबाते हैं ?'

बड़े बाबू ने कहा—'अरे साहब, आप जानते नहीं, आजकल तो हर-एक नौजवान सरकार की आँखों में कील की तरह गढ़ रहा है, तिस पर मेरा बेटा तो अविवाहित है और एम० एस-सी० पास किए हुए है। वह अगर रूस जाएगा, तो सोचिए, रास्ते में या लौटने पर उसे कैसी मुसीबत का सामना करना पड़ सकता है।...'

बड़े बाबू का तर्क व्रजमोहन को जँचा नहीं, तो भी वह चुप हो गया। नौकर शर्बत ले आया था। दोनों ने पिया।

शर्बत पीकर व्रजमोहन ने कहा—'तो अब आज्ञा दीजिए।'

बड़े बाबू बोले—'अरे ! अभी से ? अभी तो बड़ी तेज धूप है। दो मील अगर आप इस धूप में चलें, तो बीमार पड़ जायेंगे।'

व्रजमोहन भी जाना नहीं चाहता था, तो भी जमुहाई लेकर बोला—'न, बस जाने ही दीजिए। नींद आ रही है; जाकर सोऊँगा।'

'नींद आ रही है ? तो चलिए, सो रहिए। यह तो आप ही का मकान है। संकोच क्यों करते हैं ? क्या बताऊँ, आपने बड़ी ही तकलीफ की। इस धूप में···आइए, मैं आपको सोने का कमरा बताऊँ।'

व्रजमोहन फिर भी संकोच में पड़ा, तो बड़े बाबू ने प्यार-भरी झिड़की से कहा—'छिः ! तुम तो भई, बड़े शर्मीले हो ! अगर दो घण्टे आराम कर लोगे, तो मेरा कुछ छीन लोगे ? लो, अब आओ, उठो !'

अब व्रजमोहन बैठा न रह सका। शरमाता हुआ उठा।

फिर वही बरामदा और बड़े-बड़े कमरे ! वही शीशे के किवाड़ों वाला बन्द कमरा और वही रोने की आवाज ! वही सुन्दरी और वही लच्छेदार बाल, वही गोरी-गोरी पिंडलियाँ, वही गोल-गोल कलाइयाँ !

अब की बार स्थिति में अन्तर था। औंधी न होकर अब की बार उसने बरामदे की तरफ करवट ले ली थी।

व्रजमोहन ने देखा, तो अवाक् रह गया ! रंग लाल अनार के दाने की तरह था, पलकें लम्बी-लम्बी थीं, चेहरा बैजवी था, ओठ पतले और लाल थे, और माथा बिना सिकुड़न के था।

फूले गालों पर पानी ढरक रहा था, और हिचकी के साथ सारा शरीर हिल रहा था।

इस सीन को व्रजमोहन ने भी देखा, और बड़े बाबू ने भी। और, दोनों भिन्न-भिन्न कारणों से चौंक पड़े !

दोनों ने शंकित नेत्रों से दोनों को ताका। व्रजमोहन के मुँह से निकला—'आप कौन···'

बड़े बाबू ने बड़ी मुश्किल से जवाब दिया—'मेरी लड़की है !'

फिर क्षण-भर बाद ही उन्होंने कहा—''जैक के खोने की खबर से रो रही है···'

फिर इस बहाने की अनौचित्य समझकर फौरन ही बोले—'जान

पड़ता है, अभी इसे खबर नहीं मिली।···रमदेई, अरी रमदेई, देख तो, प्रतिभा अभी तक रो रही है। जैक को ले आ।'

व्रजमोहन ने बड़े बाबू के जर्द चेहरे पर दृष्टि-पात न किया; और आगे बढ़ा। मन में उसने कई बार दोहराया—'प्रतिभा! प्रतिभा! प्रतिभा!'

६

नींद किसे आती, और कैसे आती? उस गद्देदार पलंग पर घण्टे-भर तक व्रजमोहन इस तरह करवटें बदल रहा था, जैसे काँटे बिछे हों, या नीचे आग दहक रही हो। दस मिनट तक तो रोने की आवाज सुनी थी, फिर बन्द हो गई। कुत्ता मिल गया होगा, या बड़े बाबू ने जाकर कुछ व्यवस्था की होगी। पिछली बात ही जँचती थी।

रोना कुछ अनहोनी बात नहीं। विवाह के पूर्व हिन्दू की लड़की का रोना अस्वाभाविक भी नहीं, पर बड़े बाबू की बेपेंदे की बातों ने व्रजमोहन को संशय में डाल दिया, और अब इस संक्षिप्त विवाह-अनुष्ठान पर उसने विचार किया, तो उसका मन एकबारगी शंकाशील हो उठा।

जब चार बज गए, और किसी तरह नींद न आई, तो व्रजमोहन उठ खड़ा हुआ, और गद्देदार कुर्सीवाले कमरे की तरफ चला।

अब की बार वह लच्छेदार बालोंवाली सुन्दरी कमरे में न दिखाई दी; खाली पलंग पड़ा हुआ था। व्रजमोहन ने खूब आँख गड़ा-गड़ाकर सब कमरों में देखा, कहीं कोई न था।

वह अभीष्ट कमरे में पहुँचा, तो देखा, बड़े बाबू हैं, और उनके पास ही एक तिलकधारी पंडित महाशय कुर्सी पर विराजमान हैं। छोटी मेज पर कपड़े में लिपटी हुई कोई चीज़—शायद कोई पुस्तक—रखी हुई थी। पंडितजी के सिर पर रेशमी साफा था, गले में दुपट्टा था, शरीर में अचकन थी, हाथ में डण्डा था, और टाँगों में धोती थी। मुँह पर चमक थी।

व्रजमोहन को देखते ही बड़े बाबू बोले—'आओ भाई, आओ, कहो, नींद अच्छी आई!'

व्रजमोहन ने संकुचित होकर कहा—'जी, अब आज्ञा दीजिए।'

'अरे !' बड़े बाबू ने कहा—'आज्ञा कैसी ? अभी ब्याह होनेवाला है; खा-पीकर जाइयेगा।'

ब्रजमोहन ठीक बात न समझा। बोला—'ब्याह···? हाँ, मगर बारात तो आई नहीं ?

बड़े बाबू के नेत्रों में फिर भय के चिह्न दिखाई दिए, पर तुरन्त संभल-कर उन्होंने हँसते हुए कहा—'आपसे कहा था न, मैं यह ब्याह बिल्कुल संक्षेप में कर रहा हूँ। यह शास्त्रीजी हमारी तरफ से सब रस्में भुगता देंगे, एक पंडित उधर से आ जायेंगे।'

'और बारात ?'

'बस बारात में एक दूल्हा ही होंगे। शायद और दो-एक आदमी हों। मैंने कहा न, यह ब्याह संक्षिप्त···'

ब्रजमोहन चकित होकर एक कुर्सी पर बैठ गया।

अब शास्त्रीजी ने घड़ी देखकर कहा—'आ जाना चाहिए था—सवा चार बज चुके।'

बड़े बाबू ने उदासी से कहा—'वक्त हुआ है— आजायेंगे !'

दो मिनट ठहरकर शास्त्रीजी ने हँसते हुए कहा—'कहिए, छोटे बाबू राजी हो गए ?'

बड़े बाबू ने कुछ जवाब न देकर सिर झुका लिया, और ठंडी साँस ली।

शास्त्रीजी ने मानो बड़े बाबू का दुःख पोंछने के लिए बात टाली—'गए कहाँ हैं ?'

'कौन ? भूषण ? इस लड़के ने मुझे बड़ा परेशान किया शास्त्रीजी, दिन-भर लाइब्रेरी में बैठा रहता है······सुबह से गायब। जाने क्या धुन समाई है—रूस जाने की······'

सहसा बरामदे में किसी का पद-शब्द सुनाई पड़ा। क्षण-भर बाद ही एक आदमी सामने आ खड़ा हुआ। शकल-सूरत से नौकर जान पड़ता था।

बड़े बाबू ने कहा—'मालूम होता है, आ गए !'

शास्त्रीजी ने चिन्तित भाव से कहा—'शायद !···तो भूषण सुबह में······'

नौकर ने सलाम करके कहा—'आपको सेठ साहब बुलाते हैं।'

'मुझे ? कहाँ हैं ?' बड़े बाबू ने अचरज से पूछा।

'घर हैं।'

'घर हैं; आए नहीं ?'

'जी नहीं, आपको बुलाते हैं; बहुत जरूरी काम है। मुझसे साथ लाने को कहा।'

'मुझे बलाया है ? आए नहीं ?' बड़े बाबू का चेहरा अजीब तरह का बन गया। भय, चिन्ता, उद्वेग का एक साथ आक्रमण हुआ। कुर्सी छोड़कर खड़े हो गए।

शास्त्रीजी के मुँह पर हँसी की रेख दिखाई दी। बोले—'हो आइए, देखें, क्या कहते हैं; अभी तो मुहूर्त में तीन घण्टे की देर है।'

'अच्छा।' कहकर बड़े बाबू कपड़े पहनने दौड़े।

व्रजमोहन अजब चक्कर में पड़ा।

शास्त्रीजी मुँह फेरकर मुस्करा रहे थे।

१०

बड़े बाबू चले गए, तो शास्त्रीजी ने व्यस्त-भाव से कई बार व्रजमोहन की तरफ देखा। फिर बोले—'आपके घर पर तो फिक्र न होगी ?'

'मेरे घर है ही कौन ?—न बीवी, न बच्चे !'

'माँ-बाप ?'

'सब देश रहते हैं।'

शास्त्रीजी जैसे बड़े धर्म-संकट में पड़ गए। फिर साहस करके बोले—'आपसे एक निवेदन है।'

'कहिए।'

'अब कोई विचित्र बात देखें, तो दखलअन्दाज न हों।'

'वाह ! कोई दुर्घटना हुई, तो ?'

'नहीं, बुरी नहीं है।'

'आखिर क्या है ?'

शास्त्रीजी ने कुछ देर इधर-उधर किया, फिर बोले—'मैं कहता हूँ, आपकी उस काम से हमदर्दी होगी।'

'आखिर है क्या ?' व्रजमोहन ने चकित होकर पूछा।

शास्त्रीजी अँगरेजी, में बोले—'But mind, it is absolutely confidential.'[1]

इस अचकन-तिलक-धारी के मुँह से अँगरेजी सुनकर पहिले तो व्रज-मोहन अचरज में पड़े, फिर बोले—'Doesn't matter.'[2]

शास्त्रीजी धीरे बोले—'बड़े बाबूजी अपनी लड़की का ब्याह एक बूढ़े से कर रहे हैं, उनके लड़के भूषण इसके खिलाफ हैं। उन्होंने एक षड्यन्त्र रचकर बड़े बाबू को ऐन वक्त पर हटा दिया है, और उनकी अदम मौजूदगी में लड़की का ब्याह एक योग्य नवयुवक से कर दिया जाएगा।'

व्रजमोहन उछल पड़ा। उस लच्छेदार बालोंवाली सुन्दरी के रुदन का अर्थ समझ में आ गया। उत्साहित होकर बोला—'खूब!'

'तो आप बाधा तो न देंगे?'

'बाधा?—साहब, मदद दूँगा।'

शास्त्रीजी सन्तुष्ट होकर बोले—'धन्यवाद!'

व्रजमोहन ने पूछा—'पर दूल्हा कहाँ है?'

शास्त्रीजी ने जवाब न दिया था कि कमरे के द्वार पर एक मुछकटा खूबसूरत जनाब आ-खड़ा हुआ। शास्त्रीजी ने देखते ही कहा—'क्यों भूषण, रामप्रताप कहाँ है!'

भूषण ने व्यस्त भाव से व्रजमोहन की तरफ देखा, और कहा—'आप जरा बाहर आइए।'

शास्त्रीजी उठकर गए। दम-भर बाद ही दोनों वापस आए। शायद शास्त्रीजी ने व्रजमोहन का परिचय भूषण को दे दिया। आते ही भूषण ने व्रजमोहन से हाथ मिलाया, और कहा—'माफ कीजिएगा, मैं आपको पहचानता न था।'

'कोई बात नहीं।' व्रजमोहन ने दिलचस्पी लेकर कहा—'कहिए, दूल्हा कहाँ है?'

भूषण ने चिन्तित और व्यग्र भाव से कहा—'अभी आदमी भेजा है।'

---

१. 'लेकिन देखिए, बात आप ही तक रहे!'

२. 'कोई बात नहीं।'

शास्त्रीजी ने पूछा—'तो साथ ही क्यों न ले आए ?'

भूषण बोला—'मिला नहीं।'

'जल्दी बुलाइए, वक्त बीता जा रहा है।'

'आदमी भेजा तो है।'

'एक आदमी और भेज दीजिए; सेठजी न आ पहुँचे।'

'कम-से-कम घण्टे-भर तो आ नहीं सकते। मैंने ड्राइवर को सिखा दिया है !'

एक आदमी और भेज दिया गया।

दस मिनट बाद ही पहला आदमी अकेला लौटा। तीनों का चेहरा फक् हो गया !

आदमी ने एक लिफाफा लाकर भूषण को दिया। झट लिफाफा फाड़ा गया, और झट पत्र पढ़ा गया।

पत्र छोटा ही था। पढ़कर भूषण ने उसे फर्श पर फेंक दिया, और दाँत पीसकर कहा—'पाजी ! सुअर ! वक्त पर धोखा !'

कहकर वह क्रोध में भरकर उठ खड़ा हुआ, और कमरे में इधर से उधर टहलने लगा।

शास्त्रीजी ने पत्र उठा लिया, और पढ़कर मेज पर रख दिया। व्रज-मोहन ने देखा, उनका मुँह सूख गया।

तब व्रजमोहन से क्षमा माँगकर उन्होंने भूषण को साथ लिया, और दोनों बरामदे में चले गए।

व्रजमोहन तीन मिनट स्तब्ध बैठा रहा, एक मिनट इधर-उधर देखता रहा, और फिर झट मेज से खत उठा लिया।

जल्दी-जल्दी में कुछ लाइनें लिखी थीं—

'भूषण, मुझे माफ करना। पिताजी इस शादी के पक्ष में नहीं हैं। मैं उनकी मर्जी के खिलाफ नहीं जा सकता। मुझे अपनी इस दुर्बलता के लिए बड़ा खेद है।—रामप्रताप'

व्रजमोहन ने खत को मेज पर फेंक दिया, और परिस्थिति की विचित्रता और विषमता पर एकबारगी चिन्तित हो उठा।

दस मिनट बाद भूषण धीरे-धीरे आया। मुँह पर घोर चिन्ता का भाव

था, आँखें भविष्य के भय से भीतर धँस गई थीं, पैर लड़खड़ा रहे थे। आकर एक कुर्सी पर बैठा।

ब्रजमोहन ने पूछा—'कहिए, क्या निश्चय किया ?'

भूषण ने आशा-पूर्ण नेत्रों से ब्रजमोहन को ताकते हुए कहा—'कुछ कहा नहीं जाता, अजीब परिस्थिति है।'

ब्रजमोहन भी चिन्ता में डूब गया। बोला कुछ नहीं। मिनट-भर बाद भूषण बोला—'आपकी शिक्षा कहाँ तक है ?'

ब्रजमोहन बोला—'मैट्रिक तक पढ़ा हूँ।'

भूषण क्षण-भर चुप रहा, फिर बोला—'रेलवे में नौकर हैं आप ?'

'जी हाँ।'

फिर कुछ देर रुककर पूछा गया—'क्या वेतन मिलता है ?'

'चालीस रुपये।'

'और लोग कहाँ रहते हैं ? आपके पेरेंट्स कहाँ हैं ?'

'माँ है नहीं, पिता हैं।' अब ब्रजमोहन ने भूषण का अभिप्राय समझ कर कहा—'महाशय, मैंने विवाह न करने की कस्म खाई है।'

भूषण चौंक पड़ा। अब जैसे ब्रजमोहन उसके लिए स्वर्ग बन गया। घबराकर बोला—'क्या कहा ?'

'जी, क्षमा करें; आपका मतलब मैं समझ गया। पर मैंने तो आजन्म अविवाहित रहने की कस्म खाई है।' ब्रजमोहन ने जैसे दरिया में डूबते हुए कहा।

भूषण का दिल जोर से धड़क उठा। कातर स्वर से बोला—'भाई, ऐसी बात···'

इसी समय शास्त्रीजी भीतर आए। शायद बाहर से सब कुछ सुन रहे थे। आते ही बोले—'देखिए, आपसे मेरा परिचय नहीं है; पर आप मेरे लड़के के बराबर हैं, इसी से कहता हूँ। इस वक्त एक निर्दोष बालिका की रक्षा करने में आपको पूरी मदद देनी चाहिए। मुझे ही देखिए, बड़े बाबू का वर्षों का परिचित हूँ, तो भी, औचित्य-पालन के लिए, उनके अहित पर उतारू हो गया हूँ। आपको एक सच्चे नौजवान की तरह हम लोगों की मदद करनी चाहिए।'

व्रजमोहन का इरादा खोखला हो चुका था। अब इस बात ने और उस लच्छेदार बालों वाली की याद ने वह आँधी चलाई कि सब-कुछ जड़-समेत गायब हो गया !

शास्त्रीजी ने उछलकर कहा—'भूषण, प्रतिभा को लाओ, जल्दी करो। और देखो, दरवाजे सब भीतर से बन्द कर लो। जाओ, पहले दरवाजे पर···'

भूषण भागा-भागा गया और भागा-भागा आया। उसके मुँह का भाव देखकर हँसी आती थी।

पाँच मिनट बाद व्रजमोहन और प्रतिभा अगल-बगल बैठे थे। भूषण कन्यादान का अभिनय कर रहा था और नौकर-चाकर अचरज से आँखें फाड़कर अलग खड़े तमाशा देख रहे थे।

मन का पाप

१

तीस बरस की उम्र में बाबू अमरनाथ विधुर हो गए।

बारह बरस स्त्री का साथ रहा, पर बारह दिन भी दिल मिलकर न रहा। अलबत्ता इस बीच में पाँच बच्चे हो चुके थे, पर इसे दिल मिलने की निशानी नहीं समझनी चाहिए। जब पत्नी मरी, तो अमरनाथ ने ठंडी साँस ली, और घर आकर बारह बरस में बारह हजार बार दोहराई हुई प्रतिज्ञा की पुनरुक्ति की। अब आजीवन विवाह न करने का पक्का इरादा उन्होंने कर लिया।

पाँच बच्चे पैदा हुए थे, जिनमें से दो जीवित थे; एक छः बरस का एक दो बरस का। मातम-पुर्सी और क्रिया-कर्म में ही लोगों ने टीका-टिप्पणी शुरू कर दी थी। अमरनाथ को स्तब्ध और विषण्ण जानकर एक ने दूसरे से कहा—'भाई साहब, मरद की इतनी पूछ है, पर सच पूछो तो औरत बिना मरद दो कौड़ी के मतलब का नहीं।'

दूसरे ने कहा—'इसमें क्या शक है साहब, पर किया क्या जाय—मौत के सामने किसी की नहीं चलती।'

तीसरे बोले—'हाँ जी, आदमी के बस का तो यही है, दुःख-तकलीफ में दवा-दारू करें; मौत के आगे किसकी पार बसाई है। अमरनाथ ने ही इलाज-मुआलजे में क्या कमी छोड़ी थी; पर क्या बताएँ···यार, इन्सान की जिन्दगी भी क्या···।

एक पत्थर-दिल महाशय अकड़कर बोल उठे—'तुम लोग भी यार, निरे घोंचू हो। इस वक्त गरीब के दिल को तसल्ली देनी चाहिए, कि

लेकर मुहर्रमी बातें बकने लगे। और भाई, मरद तो शेर है—राजा है, उसके लिए औरत का क्या गम ? एक आज मर गई, तो कल दूसरी तैयार है। कोई औरतों का घाटा है ?'

इसके बाद इन महोदय ने अपने कई रिश्तेदारों की लड़कियों के नाम ले डाले, और प्रकट किया, मानो वे सब रिश्तेदार मुद्दत से लड़कियाँ हाथों पर धरे तैयार खड़े थे कि कब अमरनाथ विधुर हो, और कब लड़कियाँ उन्हें भेंट करें।

२

अमरनाथ ने सबसे माफी माँगी। नहीं कहा जा सकता, बारह बरस के उत्पात में कसूर किसका था; पर उन दृश्यों की पुनरावृत्ति की कल्पना से ही अमरनाथ के रोंगटे खड़े हो जाते थे। ज्यों-ज्यों दिन बीते, एकान्त के सुख का अनुभव हुआ, पिछले जीवन से इस जीवन की तुलना की, त्यों-त्यों वह प्रतिज्ञा फौलाद की तरह कठिन होती गई।

उनकी एक व्यस्का साली थी। ससुर आए, साले आए, सास भी आईं; मिन्नतें कीं, पर अमरनाथ ने कबूल न किया; अलबत्ता योग्य वर तलाश कर देने का वचन दिया। और योग्य वर तलाश कर भी दिया। साली का ब्याह भी हो गया।

स्त्री की मृत्यु के कुछ ही दिन पश्चात् दोनों बच्चों को उन्होंने ससुराल भेज दिया था। अकेले रहते, और मस्त रहते। खूब खाते-पीते, दण्ड-बैठक लगाते, पहलवानी करते, ईश्वर-भजन करते, और औरत के नाम से सदा कोसों दूर भागते।

उनका जीवन निर्द्वन्द्व हो चला। शरीर बन गया। चेहरा निखर आया। आँखों में नूर झलकने लगा। जवानी मानो फिर से अवतरित हुई।

लोगों ने यह अवस्था देखकर मुस्करा दिया। बहुतों के मन में बात उठी, और दो-चार के छन भी आई। अखाड़े के बूढ़े उस्ताद करीमखाँ ने कहा—'बेटे, घर और बच्चों की तरफ भी तो देखो।'

लड़न्त करके चुके थे कि करीमखाँ की यह बात सुनी। क्षण-भर रुके

और फिर चेहरा रक्त-वर्ण हो गया था। कपड़े उठाए, और उस्ताद के आगे माथा टेककर लंगड़ बाँधे ही अखाड़े से बाहर हो गए। फिर कभी उस अखाड़े में झाँका तक नहीं।

दफ्तर में हैड-क्लर्क से बड़ी घनिष्टता थी। बातों-ही-बातों में वे कह बैठे—'भाई, शादी तुम्हें करनी ही चाहिए।' शायद कुछ ऐसी बात भी कह दी थी, जिसका अर्थ यह हो सकता है कि उनके-जैसे बलिष्ठ आदमी का स्वच्छन्द रहना समाज के लिए घातक हो सकता है।

बस; वह सारी घनिष्ठता समाप्त हो गई। न सिर्फ यही, बल्कि उस दफ्तर की नौकरी छोड़कर एक जगह मुनीमी कर ली।

इसे उन्माद कहें या पागलपन या क्या कहें ?

३

मुनीमी करना आसान नहीं; बड़े जीवट का काम है। दस से चार तक की पाबन्दी के बाद का सारा मौज-मजा मिट्टी हो गया। पहले अपने लिए भोजन आप ही पकाते थे, पर अब यह असम्भव हो गया।

मुनीमों में कहार और नौकर की गुन्जाइश कहाँ, 'ढाबे' में कुछ दिन खाया, तो स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। घर पर बनाने का प्रयत्न किया तो मालिक की भृकुटि और लाल आँखें ! कसरत और ईश्वर-भजन में कटौती करना असम्भव ! अमरनाथ को जीवन में आफत-ही-आफत नजर आने लगी।

ढूँढ़-खोजकर एक ऐसा ब्राह्मण पा लिया, जो सिर्फ रोटी-कपड़ा लेकर खाना बनाने, बर्तन माँजने, झाड़ू देने और धोती तक धोने को तैयार हुआ। अव्वल नम्बर के त्यागी और संतोषी का मुँह उसने बनाया, और अमरनाथ ने संतोष की साँस ली।

विश्वास तो उस पर कर ही लिया, लेकिन संतोष की साँस इसलिए ली कि लोगों को ब्याह कर लेने का अनुरोध करने की गुंजाइश अब नहीं रही। कुछ ने यहाँ तक कह दिया था—'यार, ब्याह न करो तो किसी विधवा को घर में डाल लो; रोटी-पानी की तकलीफ तो न रहे। जब जी चाहे निकाल देना !' अमरनाथ यह बातें सुनते थे, और जैसे जलते तवे पर छौंक पड़ता था।

जी, तो यह ब्राह्मण महाशय, सीधे-सादे, गरीब, ईमानदार, धर्मभीरु, साधु* एक दिन जो हाथ लगा, लेकर गायब हो गए।

रो-झींखकर नौकरी पर पहुँचे, तो मालिक की नजर पड़ गई। मालिक अच्छे 'मूड' में थे, मुनीम की उदासी का कारण पूछने लगे। यह मुहब्बत पहले-पहल नसीब हुई थी, इसलिए मुनीम जी खुल पड़े।

मालिक जानते थे, ब्याह से उन्हें चिढ़ है; इसलिए वह बात उन्होंने न छेड़ी। बोले—'बड़ा अफसोस हुआ, मुनीमजी, वाकई दुनिया बड़ी धोखेबाज है, जिस पर विश्वास करो, वही जड़ काटता है। हरे! हरे!!'

मुनीमजी को धीरज बँधा। ऐसी बात और किसी ने न कही थी।

मालिक फिर बोले—'मुनीमजी, यह शहर है। गैर-मातवर आदमी का तो धेले का विश्वास नहीं करना चाहिए।···और आपने हम से क्यों नहीं कहा? हम किसी मातबर आदमी का इन्तजाम करा देते। वाकई साहब, यह मरद की जात बड़ी हेच होती है।···मगर औरत का मामला···। आप तो घर में अकेले हैं न?···अब बताइए, दोनों तरफ से मुसीबत! किसी औरत को भी कैसे रखा जाय!···अरे हाँ, देखिए···।'

अमरनाथ के अनुकूल बातें थीं, और बड़े मनोयोगपूर्वक सुनी जा रही थीं। सहसा बड़े मुनीम ने हिसाब-किताब के बारे में कुछ पूछने के लिए अमरनाथ को आवाज दी। उन्हें उठना पड़ा, पर पाँच मिनट बाद फिर मालिक के सामने बैठे थे।

शायद मालिक कुछ आवश्यक बात कहते थे। उसी—'अरे हाँ, देखिए···' से शुरू किया—'···नुकसान तो जो हुआ, उसे पीछे सुनूँगा; घबराने की बात नहीं है—इस समय तो यह कहता हूँ कि एक बात मेरी समझ में आई है।'

अमरनाथ सुनने को तैयार हुए, तो मालिक ने कहा—'नुकसान की तो चिन्ता न कीजिए; मेरे रहते आप तकलीफ न पायेंगे; पर मेरी सलाह है···।'

---

*नौकर रखती दफा अमरनाथ ने मित्रों के आगे उसके लिए इन्हीं विशेषणों का प्रयोग किया था।

वह सलाह यह थी कि मालिक की मिसरानी काफी बूढ़ी हो गई थी। उसकी एक विधवा लड़की थी। बेचारी गरीबनें थीं। दोनों को रोजगार मिलते रहने से बड़ा पुन्न होगा। अमरनाथ चाहें तो दोनों में से किसी एक को रख सकते हैं। दोनों की विश्वस्तता की गारण्टी मालिक देंगे। वेतन सिर्फ दो रुपए देना होगा। बाकी मदद मालिक कर देंगे।

नुकसान-भरपाई के विषय में मालिक का आश्वासन और मिसरानी का बूढ़ी होना—इन दो सत्यों से वही तथ्य निकला, जो मालिक को अभीष्ट था। यानी मिसरानी रहेगी अमरनाथ के घर, और युवती कन्या मालिक महोदय के रसोई-घर का चार्ज लेगी!!

मालिक लखपती थे, चालीस पार करने को थे, स्थूल थे, शौकीन थे, पान और सुर्मे के आशिक थे; और भी बहुत कुछ थे। स्त्री उनकी थी नहीं, गोद का लड़का बोर्डिङ्ग-हाउस में रहता था।

४

मिसरानी रहने लगी। दिन-भर रहती, रोटी करती, बर्तन माँजती, झाड़ू-बुहारी देती और रात को चली जाती। अमरनाथ को दुतर्फा आराम मिला; इधर रोटी-पानी की इल्लत से छुट्टी मिली, उधर मालिक के व्यवहार में भी अन्तर आ गया।

मिसरानी चालीस से इधर थी। शायद पैंतीस पार न कर पाई हो। वर्ण उसका गौर था, पर मैले कपड़े पहनने के कारण यह गौर वर्ण ग्लानि-पूर्ण हो गया था। यह सच बात है कि अमरनाथ ने महीनों तक उसे उसकी उम्र से अधिक वयस्का समझा और कभी पूरी तरह आँख उठाकर उसे देखा तक नहीं।

एक दिन मिसरानी मालिक के घर से नया धोती जोड़ा लाई। नहा-धोकर, बाल सँवारकर उसने पुरानी और मैली धोती को सूखने डाल दिया और महीनों बाद सफेद धोती पहनी।

सहसा अमरनाथ आ गए। तौलिए में सब्जी थी और शरीर में कमीज। मिसरानी ने बाल बाँधकर धोती पहन ली थी, धोती बिलकुल नई थी, पतली भी थी, सूरज की रोशनी कपड़े से छन रही थी।

अमरनाथ ने भर-नजर उधर देखा। इतने में मिसरानी ने मुँह फिराया ! अमरनाथ के नेत्र झुक गए। नेत्र क्या झुके मानो सशरीर गड़ गए। स्वस्थ मुँह पर सुर्खी आ गई। शरीर काँप गया।

मिसरानी ने न कुछ देखा, न समझा। आकर सब्जी का तौलिया सँभाल लिया और रसोई-घर में घुस गई।

अमरनाथ आकर बैठक में बैठे। पर बैठ न सके; टहलने लगे। टहल भी न सके, लेट गए। और, फिर दो मिनट बाद ही टोपी पहनकर बाहर निकल गए।

मिसरानी ने आवाज दी—'रोटी में देर नहीं है।'

'अभी आया।' वहकर अमरनाथ निकल गए। बाजार में एक मित्र मिल गए। बड़े खुशदिल आदमी थे। मिलते ही दो-चार ऐसी बातें सुनाईं कि अमरनाथ की अन्यमनस्कता काफूर हो गई। हँसते-हँसते दोनों घर आए। मित्र भी जबर्दस्ती मेहमान बन गए।

दो घण्टे के बाद दूकान पर बैठे-बैठे अमरनाथ की अन्यमनस्कता फिर बढ़ने लगी। लिखने में बार-बार अक्षर-भेद होने लगा। औरत ! शादी ! गृहस्थी ! तीनों अक्षर बार-बार नेत्रों के आगे आने और विलीन होने लगे। कई बार उन्होंने सिर को जोर से झटका दिया। पर चिन्ता झटका देने से चिपटती है, झड़ती नहीं।

ससुराल उनकी शहर में ही थी। मालिक की उदारता से लाभ उठा कर उन्होंने कुछ देर की छुट्टी ली, और ससुराल चल दिए।

सास थी। साली नहीं थी। साले भी नहीं थे। एक बच्चा सो रहा था, दूसरा नानी के निकट बैठा था। दामाद को देखकर सास उठ खड़ी हुई, और आसन बिछाकर बैठाया।

सोता बच्चा जाग उठा। अमरनाथ ने दोनों के मुँह की ओर ताका। पत्नी से दोनों की शक्ल मिलती थी। अमरनाथ की आँखों के आगे वह मूर्ति नाच गई। साथ ही गृहस्थी की उन झंझटों और विभीषिकाओं के चित्र भी विचित्र रूप धारण कर-करके आने लगे। औरत ! शादी ! गृहस्थी !

जब विदा हुए, तो दो-चार रोज के लिए छोटे बच्चे को साथ लेते आए।

सीधे घर आए। मिसरानी अभी थी। बरसात का मौसम था, पर धूप निकल रही थी। मिसरानी वही नई धोती बाँधे गेहूँ बीन रही थी। अमरनाथ रास्ते-भर निश्चय करते आए थे कि मिसरानी के मुँह की तरफ न देखेंगे; पर घर में घुसे, तो सबसे पहले वहीं नजर पड़ी, और क्षण का अति सूक्ष्म भाग बीतने से पहले ही दिल में आवाज उठी—'शक्ल-सूरत तो बुरी नहीं है।'

यह हुआ पलक मारते। अमरनाथ फिर मर्माहत हुए। नजर फिर नीची हो गई। मन फिर क्षोभ से भर उठा। मिसरानी गेहूँ की थाली रखकर उठी, और हँसती, ताली बजाती, बच्चे को गोद में लेने के लिए आगे बढ़ी।

जब गोद में लिया, तो अमरनाथ का हाथ मिसरानी की चोली से छू गया। साथ ही एक बार उन्हें ऐसा लगा—जैसे सिर पर गिरकर बिजली जमीन में धँस गई। भयभीत नेत्रों से उन्होंने एक बार मिसरानी के मुँह की ओर ताका। पर वह बच्चे को लेकर हँस रही थी। अमरनाथ मिनट-भर के लिए संशय में पड़ गये।

मिसरानी हँसी क्यों? हाथ के स्पर्श का अनुभव उसने जरूर किया। उसे सकुच जाना चाहिए था या क्रोध की रेख दिखाई देती। यह हँसना—और लड़के के बहाने हँसना —अचरज में डालता है।

उम्र उसकी ज्यादे तो है नहीं। हद तीस बरस होगी! ऐसी गलती क्यों की? औरत बुरी चीज है! औरत के कारण कितना कष्ट पाया! अब कितना परिवर्तन है! क्या उस मूर्खता की पुनरावृत्ति होगी? मिसरानी को जवाब देना होगा। अभी इसी दम।

खाता रखकर अमरनाथ फिर किसी बहाने से निकल गए। मालिक थे नहीं और भला रोकता कौन?

सीधे घर चले। मिसरानी को अभी जवाब दे देंगे। अब नहीं रख सकते; कुछ भी हो जाय।

बादल छा रहे थे! मस्त हवा बह रही थी। सावन समाप्ति पर था।

घर का किवाड़ खुला था। जाने क्यों—पैर दबाकर भीतर घुसे। रसोई-घर सुनसान था। पड़ोसिनें कहीं गई थीं। सारे मकान में थी, केवल मिसरानी और छोटा बच्चा!

बच्चे को छाती से चिपकाए मिसरानी चटाई पर पड़ी सो रही थी। वही नई धोती उसके शरीर पर थी। धोती सिर से और छाती से हट गई थी। अमरनाथ कई मिनट खड़े रहे। स्तब्ध और अविचल, जैसे पत्थर की मूर्ति।

फिर एकाएक वह काँप गए, माथे पर पसीना आ गया, आँखें लाल हो गईं, पैर काँपने लगे।

मिसरानी ने करवट बदली। उसका हाथ बच्चे के शरीर पर जा पड़ा। बच्चा एकाएक चौंक उठा।

जैसे किसी ने गड़ा खूँटा उखाड़ लिया! अमरनाथ वहाँ क्षण-भर भी न ठहर सके। पलक-मारते बाहर आ गए। मकान तब भी सुनसान था। वे बेतहाशा दौड़कर बाजार में आए, और किसी एकान्त स्थान पर बैठकर शान्त होने की चेष्टा करने लगे।

× × ×

कल उन्होंने मिसरानी को जवाब दे दिया है। अब, ब्याह करेंगे! क्या करेंगे, इसका पता हमारे अतिरिक्त और किसे है?

कौड़ियों का हार

१

बात उस जमाने की कह रहा हूँ, जब दूध के दाँत टूटे न थे। यों पाँच बरस का होते-होते लंगर कसना सीख लिया था, पर…शर्म लगती है… आठ-नौ तक सारी रात और दिन का अधिकांश नंगे घूमने में जैसा कल्पनातीत सुख मिलता था, वैसा धोती की इल्लत में नहीं।

घटना गाँव से शुरू होती है। गाँव चाहे शहर की जड़ में हो, चाहे शहर से बीस मील दूर, बच्चों के लिए गाँव है। शहर में आयु की एक खास अवधि तक जाना उनके लिये निषिद्ध है, और निरापद भी नहीं। जी, इसीलिए गाँव के जो-जो अनिवार्य संस्कार होते हैं, मैं उन सबमें पारङ्गत था।

कितने बड़े आदमी का बेटा था—इसकी याद या तो कभी-कभी माँ तब दिला देती थी, जब मुझे मेरी आवारगी के लिये डाँटती थी, और साथ-ही-साथ पूर्वजों के धन-भण्डार का बखान करती थी, या फिर—तब मालूम हुआ, जब शहर में जाकर पिताजी ने जबर्दस्त गल्ले की आढ़त शुरू की, और अंग्रेजी स्कूल में खानदान की इज्जत चिरस्थायी रखने के लिए बहुत-से अँग्रेजी सूट सिलवा दिए थे।

खैर, किस्सा गाँव का था। नौ बरस का कमसिन बच्चा! एक हाथ में टूटा हुआ तार का घेरा, दूसरे में घेरा चलाने की लकड़ी, सिर पर धूल-धूसरित जरीदार टोपी, बदन में कीचड़ से पुता हुआ रेशमी कुरता, और इसके नीचे—बस, कोरा घासलेट! आस-पास जिगरी यारों का जमघट। छः इनमें भंगी थे, तीन चमार, तीन ब्राह्मण, और कितने माली, राजपूत,

कुम्हार के कुल-दीपक थे—इसकी ठीक-ठीक गणना स्मृति के तख्ते पर बाकी नहीं रही।

यह हमारी मण्डली का परिचय था। यों तो सभी दोस्त थे, और दूसरे गाँवों के लड़कों से कभी युद्ध छिड़ता, तो सब-के-सब मिलकर घुटने टेक देते थे, पर ईमान की बात यह है, कि सारी मण्डली में जिगरी दोस्त था—तो एक चुन्नी भंगी का!

इसका परिचय देते हुए गला भरता है, पर कहानी में रस और मस्ती न हो तो वह कहानी नहीं। इसलिए, सुनिए—रंग उसका काले आबनूस की तरह चमकता था। और आश्चर्य! रंग के साथ दाँतों की सफेदी का भी उसमें सामंजस्य था। उम्र होगी कोई दस साल की, आँखें बड़ी-बड़ी, हमेशा एक लँगोट बाँधे रहता, और कन्धे पर हल्की-सी लाठी लिए रहता। घर में घड़ा-भर-भरके रुपये आने की बात, माँ की डाँट की बात, गुरुजी, ठाकुरजी, रसोई-घर और पेशाब-पाखाने की बात तक उससे कह देता था। यह भी कह दूँ—कि तासीरे-इश्क इक-तरफा न थी; उधर भी वैसी ही सफाई थी।

पिताजी के विषय में ज्यादे कहने की जरूरत नहीं; क्योंकि कहानी से उनका सम्बन्ध नहीं। वे तो मेरी आदतों से सख्त नाराज रहते थे, और एकाध कारण से तो उन्होंने मेरे हाथ का पानी पीना भी छोड़ दिया था। शायद आप इस कहानी में कला की खोज करने लगें, इसलिए वे कारण भी बता दूँ। एक तो यह, कि मैं जाड़ों में छमासी और गर्मियों में इकमासी स्नान करता था; दूसरा यह—कि मैं अक्सर जंगल में पाखाना फिर आया करता था, फिर धोने की याद न रहती थी, और आते ही खाने पर बैठ जाता था!

तो, चुन्नी से बन्दे की खूब घुटती थी। हमारे इस बेढंगे याराने पर सारा गाँव थू-थू करता था। पर हम हमेशा उन लोगों में रहे, जिनके लिए 'काफिले चलने और कुत्ते भूँकने' का वाक्यांश उपयोग में लाया जा सकता है। सभी ने जोर मार लिया, पर हमारी यारी में बाल-बराबर भी फर्क न पड़ा। लोगों ने जो-जो जोर लगाए, उन सबका संग्रह करूँ, तो ग्रंथ बन जाय, इसलिए सबको सोलह-आने भूलकर सिर्फ उसका उल्लेख करूँगा,

जिसे नींव मानकर ही इस कहानी की दीवार खड़ी की गई है।

२

चुन्नी के अतिरिक्त उसके किसी कुटुम्बी से मेरी घनिष्ठता न थी। उसका बाप एक कोने में खाट पर बैठा, चिथड़ों में लिपटा, नारियल हाथ में लिए 'खों-खों' करता था। उसे देखकर मेरी आँखें चमक उठतीं, सिर के बाल खड़े हो आने का उपक्रम किया करते थे, और चुन्नी को बुलाकर साथ ले जाने में मैं अधिक-से-अधिक सतर्कता बरतता था। इसका कारण था—मेरे जाते ही वह चुन्नी पर बक-झक करने लगता था। बच्चे की समझ! —मैं समझता था, सारे गाँव की तरह यह भी मुझे अब्बल दर्जे का छटा-हुआ मानता है, और अपने सुपुत्र का मेरे साथ हिलना-मिलना पसन्द नहीं करता। पर उसकी भाव-भंगी पर लक्ष्य देकर अब विचार करता हूँ, तो पाता हूँ—बात इससे दूसरी थी। गाँववालों ने दोनों यारों की दोस्ती तोड़ने के जो-जो प्रयत्न किये थे, एक उनमें यह था—कि चुन्नी के बाप सूसन को बुलाकर खूब डाँटा गया, कि कभी अपने घर में न घुसने दे, और अपने लड़के को कभी मुझसे न मिलने दे। पर सूसन सिर्फ दिखावे के लिए चुन्नी को डाँट बैठता था, मुझे डाँटने या घर न आने देने की उसकी कहाँ हैसियत थी?

खैर, बाप से तो इसीलिए घबराता था, माँ चुन्नी की मर चुकी थी। एक बड़ा भाई था, वह अव्वल दर्जे का आवारा और बदमाश था। घर में कभी-कभी ही आता था। मेरे प्रति समभाव रखता था। मुझसे उसकी बहुत कम भेंट हुई, और बहुत-कम बात हुई।

एक चुन्नी की बहन थी—चुन्नी से कोई एक बरस छोटी। शहर-जितना सौंदर्य चाहे गाँव में नहीं मिल सकता, पर वह बात भी पक्की है, कि गाँवों-जैसा सौंदर्य भी शहरों में मिलना कठिन है।

यह भंगी की छोकरी! मुझे याद नहीं, सौन्दर्य की क्या व्याख्या मेरे दिमाग में उस समय थी, पर मुझे वह बेहद भाई। चुन्नी के साथ दोस्ताना तो था ही, उसकी बहन से भी तबियत में उन्सियत पैदा होने लगी। इस लड़की को चौपड़ की कौड़ियों, और खिलौनों का बहुत शौक था। मैंने अक्सर घर से उसे बहुत-सी कौड़ियाँ ला दी थीं। कभी-कभी मिठाई,

बताशे और खाँड भी ला देता था।

यह कौड़ियाँ, जो मैं उसे लाकर देता था, गाँव में बड़े महत्व की दृष्टि से देखी जाती हैं। छोटे बच्चे इन्हें छूते भय खाते हैं। ग्रामीण-संस्कृति में मैं अब तक इस अजीब प्रथा को देखता हूँ, कि, बाप, मामा, ताऊ, भाई—सब अपनी-अपनी मण्डलियों में, दीवाली की तीनों रात इन कौड़ियों का उपयोग करते हैं, और हमारे जैसे बच्चों के मन में उनके प्रति भयानक भय, सम्मान और घृणा भर दी जाती है।

जी, इन्हीं कौड़ियों के दान से मैं चुन्नी की बहन को सम्मानित किया करता था।

यह बातें उस जमाने की हैं, जब चुन्नी की बहन को दुलहिन बनाकर और अपने को दुलहा बनाने में न मुझे कुछ संकोच था, न चुन्नी का एतराज। बच्चों में यह खेल कैसा स्वाभाविक और प्रचलित है, इसे हिन्दी का पाठक खूब समझता है। आप सुनकर हँसिये नहीं, कि हम, माँ का एकाध लँहगा लाकर चुन्नी की बहन को बहू बनाते, और पिताजी की शेरवानी और साफा लाकर खुद बनते दुलहा, और चुन्नी सिर पर फटा हुआ दुपट्टा बाँधकर हफ्ते में कई बार किसी एकान्त-स्थान पर कन्या का पिता बनकर बड़े ठाठ से हमें कन्या-दान किया करता था। दो-चार जिगरी यार-दोस्त, जो बराती बनते थे, उनका नाम मुझे इस समय याद नहीं।

३

हाँ तो—चुन्नी के साथ मेरा सम्बन्ध-विच्छेद करने के जो-जो उपाय गाँववालों ने किए, उनमें से, जिस एक को नींव मानकर इस कहानी का निर्माण हुआ, उसे कहने का मैंने वादा किया है। वही बात अब आ रही है।

चुन्नी की बहन का नाम था धपिया। धपिया की सुन्दरता के विषय में जितना कह सकता था—कह चुका। इससे ज्यादे कहना गलत-बयानी होगी; क्योंकि उसका उस समय का रूप मुझे ठीक याद नहीं।

यह कहानी प्रधानतः धपिया की है। इसलिए पहले चुन्नी का जिक्र छेड़ना मेरी राय में कला-संगत नहीं। पर किसी कहानी में कला के सब

प्रतिबन्ध तोड़ डालना, और कहानी की मजेदारी में फरक न आने देना भी तो मेरी समझ में मामूली 'कला' नहीं है। वैसी-ही कला पाठक इस कहानी में पायेंगे।

तो—कौड़ियों, बताशों और मिठाइयों की बात पापी दुनिया के कानों में बेहद अतिरञ्जित होकर पहुँची। अब तो कलियुग की भयानकता पर ओठ फट गये। दस और नौ की उम्र में······कैसे विश्वास किया जाय? एक बार तो ऐसा जान पड़ा—गाँव-भर की लाञ्छना का शिकार मैं बन गया हूँ। जिसे देखता हूँ, मुझ पर उँगलियाँ उठाता है, जिससे सुनता हूँ, धपिया का नाम सुनता हूँ, जहाँ-कहीं रुकता हूँ—घोर कलिकाल पर भयानक अट्टाहास सुनाई देता है! रे भगवान्—यह हो क्या गया!

तीन दिन मैं चुन्नी के घर झाँका तक नहीं; ज्यादा समय गाँव के बाहर, कच्चे तालाब के किनारे, कीकर की छाँह में बीता। मुँह लटककर बटुआ-सा हो गया। माँ ने मुझे डाँटा नहीं, पिताजी देखकर मूँछों में मुस्कराये।

पर यह दवा अस्थायी थी। चौथे दिन चुन्नी ने जा पकड़ा। कपड़ा बिछाकर मैं कीकर के नीचे सो रहा था। धड़ाम्-से आकर कोई ऊपर गिर पड़ा। चुन्नी कह रहा था—'क्यों आड़ी, क्या अब भूल जाने का इरादा है?'

मुझे खूब याद है—मैं रो पड़ा था। आँसू जैसे धिकल आये थे। बिना कुछ सोचे मैं चुन्नी के गले से लिपटकर रोने लगा।

इसके बाद तो धत्तेरे गाँववालों की! किसकी बदनामी, किसकी थू-थ—सब मिनटों में साफ हो गई! वही दोस्ताना, वही हँसी-खेल, वही आवारगी, और दो-चार दिन बाद वही कन्या-दान का स्वाँग!



सिन बरस बारह का हुआ, दिमाग में समझ की कोपलें फूटने को हुईं, चेहरे पर गाम्भीर्य के लक्षण दीखने लगे, ब्याह-शादी के विषय में भी अनिवार्य ज्ञान-वृद्धि होने लगी, साथियों से जरा-जरा कटने लगा, स्नान रोज करने लगा, और कपड़े जरा ज्यादा साफ रहने लगे। पिता मुझे

अँग्रेजी की तालीम देना चाहते थे। छोटे-मोटे जमींदार अभी तक कलक्टर साहब से कृपा-पात्र बनने के लिए लड़कों को अँग्रेजी शिक्षा दिलाना आवश्यक समझते हैं। वही सनक पिताजी पर सवार हुई।

नागरिकता का भूत भारत पर धीरे-धीरे चढ़ रहा है। दस वर्ष हुए—तब भी यह भूत इसी गति से चढ़ रहा था। पिता ने खूब रुपया लगाकर शहर में आढ़त की दूकान खोली। चार-छः महीने बाद, जब दूकान जमने लगी, हम लोग भी शहर जाने की तैयारी करने लगे।

सिर्फ बूढ़ी दादी को गाँव रहना था। कोठी पर चौकीदार-जमादार पूर्ववत् रहते थे। बाकी सब परिवार शहर जाने की तैयारी करने लगा।

पाँचवीं क्लास तक मैं गांव के स्कूल में पढ़ चुका था। इस स्कूल के पंडितजी जमींदारी का जरा लिहाज न करते थे; जरा गलती हुई कि चुटिया पकड़कर चाँटा रसीद कर दिया। सुना था—शहर में शिक्षक छात्र को मार नहीं सकता; वहाँ बड़ी मौज है, शाम को बाग में गेंद-बल्ला खेलो, सुबह खा-पीकर स्कूल जाओ; और शाम को तीन-चार बजे लौट आओ। और वहाँ अँग्रेजी भी पढ़ाई जायेगी। नई-नई पुस्तकें पढ़ने को मिलेंगी। पण्डितजी के अत्याचार और हर-घड़ी पढ़ने में पिले रहने के आगे जब इस पुष्पित भविष्य की कल्पना की, तो मैं अनेक बार हर्ष से फुदक उठा।

धोबी सबके कपड़े दे गया, नाइन आकर बलैयाँ ले गई, मिसरानी ने आशीर्वाद दिया, पुरोहितानी ने अपना पुराना नाच नाचकर माँ को प्रसन्न किया, और माँ ने सब का यथोचित सत्कार कर, विदा किया। जाते समय सभी की आँखों में आँसू भरे हुए थे।

वह दिन लँगोटियों से मिलने में बीता। पण्डितजी को सूरत दिखाने की मेरी हिम्मत न हुई। बाकी सब साथी अच्छी तरह मिले। चुन्नी से विदा लेने में कुछ खासियत न थी। जब से शहर जाने की चर्चा हुई थी, तब से बहुत-कुछ कहा-सुना जा चुका था। अब जब अन्तिम स्थल आया तो उसने हँसकर दाँत दिखा दिए और हाथ आगे बढ़ाकर कहा—'आड़ी, देखो, भूल न जाना।'

बस, उत्कट मित्र ऐसे अभिनय-हीन भाग से विदा हुए।

अजी, आप बुरा न मानिए, एक अभाव दिल में कई बार खटका। चुन्नी की बहन को मैंने कहीं न देखा। उम्र जरा बढ़ गई थी और कपड़े नये पहने हुए था, इसलिए सूसन के घर में घुसने तक की मेरी हिम्मत न पड़ी। सच कहूँ; उसे पाने की मैंने कोशिश ही न की। एकाध बार कुछ खिचाव-सा हुआ, पर शहर देखने के चाव में सब-कुछ भूल गया।

हलके छकड़े को हमारे यहाँ ताँगा कहते हैं। जमींदार का ताँगा सब से बढ़िया होता है। इसी ताँगे में सब सामान लादकर मैं सपरिवार सवार हो गया। बहुत-से संगी-साथी, गाँव के मर्द-औरतें, यहाँ तक कि बहुत-से ढोर भी, हमारे ताँगे के चारों तरफ रोनी सूरत बनाये खड़े थे। अब सोचता हूँ, तो उस मौके को 'फेअरवेल एड्रेस' का ग्रामीण संस्करण समझता हूँ।

मेरी माँ अनेक स्त्रियों के साथ गले मिल-मिलकर रोई। जब गढ़वाले ने कई बार हाँक लगाई—'साहनी, दिन छिप जायेगा; देर न करो।' तब कहीं माँ को छुट्टी मिली।

मैं तब तक इतना भावुक न था। मेरी आँखों से एक आँसू न निकला। मैं गौरव और आनन्द-भरी नजरों से चारों तरफ ताकता था और जिस साथी पर मेरी नजर पड़ती थी, ओठों ही ओठों में मुस्करा देता था।

ताँगा गाँव से आधा मील निकल आया। गाँव छूटने का खेद धीरे-धीरे शुरू होने लगा था। वह खेल, वह आजादी, वह साथी शहर में कहाँ मिलेंगे? वैसी दोस्ती किससे पटेगी? चुन्नी जैसा जिगरी कहाँ से पाऊँगा?......

चुन्नी की बहन की बात मेरे मन में चोट मारने वाली ही थी, कि अकस्मात् गड़वाला चिल्ला उठा और उसने गाड़ी ठहराकर एक-साँस में सैकड़ों गालियाँ दे डालीं। पूछने पर मालूम हुआ—कोई गाड़ी के नीचे आता-आता बच गया है।

गड़वाला नीचे उतर चुका था। हम सब व्यग्र बने बैठे थे। सहसा गालियों की बौछार के साथ, उसने पीली ओढ़नी, लाल घघरी पहने, एक छोकरी को गाड़ी के नीचे से खींचकर निकाल लिया और उसके ऊपर

घूंघट उतारा, तो यह देखकर मैं अचरज से उछल पड़ा—कि वह छोकरी धपिया थी !

उसे देखकर मैं गाड़ी से उतर पड़ा। चोट उसे जरा भी कहीं न लगी थी। माँ ने उसे पहचाना, और नाम लेकर उसे पुकारा। मैंने देखा—आँखें उसकी आँसुओं से भीग रही थीं। उसने एक बार माँ की तरफ देखा—और फिर अकस्मात् मेरे परों से लिपट गई।

गड़वाला, 'हैं ! हैं !' करके चिल्ला उठा—'अरे, भैया को छू लिया, राँड की राँड ! अब नहाना पड़ेगा; और लगी घण्टा-भर की देर !'

माँ ने कहा—'नहीं रे, नहाना-धोना क्या—पानी छिड़क दूंगी, काफी है। बच्चे हैं, साथ-साथ खेले हैं। परले गाँव से आ रही होगी; देखकर जी उमड़ आया।'

तब पुचकारकर छोकरी से बोलीं—'जा, बेटी, जा, अपने घर जा, हम लोग जल्दी ही लौटेंगे। राजी-खुशी रहियो। ले, यह मीठी पूरी ले; खा लीजियो। और यह चार पैसे ले, इनकी मिठाई खाइयो।

फिर मुझसे कहा—'चल इधर, पानी का छींटा दूं—तब आकर बैठ गाड़ी में।'

इतनी देर में हाथ उसके मेरे पैरों से छूट चुके थे। गड़वाले ने मीठी पूरी और चार पैसे उसके पल्ले पर डाल दिये, और मैं जल-छिड़काव के बाद गाड़ी में बैठा।

ताँगा जब तक मुड़ न गया, मैंने उसे उसी जगह, ज्यों-की-त्यों जमी देखा। मैं आँखें फाड़-फाड़कर उसकी तरफ ताकता रहा। जब गाड़ी मुड़ गई, तो कुछ देर तक मेरा मन उदास रहा। फिर जो इस घटना को भूला, तो बरसों बाद याद आई।

५

बरसों बाद गाँव लौटने का इत्तफाक हुआ। अभी की तो बात है; कोई एक महीना बीता होगा। अब तो रेखें आ गई हैं। उन बातों को आठ बरस तो बीते ही होंगे। कॉलेज की किसी क्लास में पढ़ता हूँ। गाँव में मेरी दादी का देहान्त हो गया, उधर कॉलेज की छुट्टियाँ थीं, इसीलिए इस बार शहरी

मौज और कॉलेज-लाइफ का मजा छोड़कर देहात गया था। उधर प्रोफेसर···नए आए थे। वे सदा किसानों की सेवा का आदेश हमें दिया करते थे। उनका आग्रह था, कि इस बार अपनी जमींदारी में जाकर किसानों की दशा देखूँ—और उनके बताए हुए मार्ग से किसानों के उद्धार का उपाय सोचूँ।

पर वह सब-कुछ न होना था, न हुआ। सारा दिन ताश खेलते, या उपन्यास पढ़ते बीत जाता, शाम को लेटने की इच्छा होती, और रात का कुछ भाग बीत जाता, पुराने साथियों पर रौब गाँठते।

आखिर एक दिन दिल पर बहुत जोर डालकर, अर्दली को साथ लेकर और ताँगे में सवार होकर अपनी ही जमींदारी के एक गाँव में पहुँचा। पढ़ने में मेरी तेजी की, और कलक्टर साहब से बात कर सकने लायक योग्यता की बात सुन-सुनकर गाँववाले मुद्दत से मालिक के बेटे को देखने के लिए उत्सुक थे। आज मेरी पहुँच के पहले से ही सब लोग उजले कपड़े पहने, हँसते हुए स्वागत को तैयार थे।

प्रोफेसर साहब के बताए हुए बहुत-से प्रश्न मैंने उन लोगों से किए। पर कुछ पता न लगा। सब प्रफुल्ल थे। सब अपने को खुशहाल बताते थे। सब मेरे दिल के गुण गाते थे, और मेरे चारों तरफ बलैयाँ लेने को उत्सुकता प्रकट करते थे।

मैंने गाँव के सब बच्चों को एक-एक चवन्नी दिलवाई, अछूत बालकों के लिए एक-एक जोड़े का प्रबन्ध किया, और मुखिया और गाँव-भर के ब्राह्मणों के लिए एक-एक दुपट्टे की व्यवस्था कर, वापस लौटा।

गाँववालों के विषय में प्रोफेसर साहब के वे दयनीय चित्रण मुझे गलत जँचने लगे, और तब मैं उनकी बात को एकदम भूल-सा गया। ग्राम-सुधार की भावना का भी तब से अभाव हो गया है। लौटने का समय निकट आता जा रहा था।

एक दिन शाम को मैं गाँव से बाहर निकल पड़ा। अँधेरा होने को था। उसी कच्चे तालाब के पास खड़ा था, जिसमें चुन्नी के साथ गोते लगाया करता था। इतने में देखता हूँ—एक तरफ से चुन्नी आकर खड़ा हो गया।

चुन्नी से अब तक मुलाकात नहीं हुई थी। सुना था, ब्याह उसका हो चुका है, और वह अब अच्छा तड़का जवान बन चुका है। बात वाकई सच थी। देखकर मैं मुस्कराया, और कहा—'क्यों रे—प्रसन्न तो है ?'

उसने सिर घुमाकर मेरी तरफ ताका। मुख की भावभंगी, मैं उस अँधेरे में देख न सका। उसने एक बात न कही, और मुँह फेर लिया।

मैं एक बार दहल-सा गया। बचपन की उस दोस्ती और इस वक्त के उपेक्षापूर्ण प्रश्न का तुलनात्मक रूप अकस्मात् मेरे सामने आ गया।

अब चुन्नी ने गम्भीर कण्ठ-स्वर से कहा—'आड़ी, आज ऐसी बात करते हो ? वह बखत भूल गए ? हाय रे दुनिया !' यहाँ तक कहकर उसने एक ठण्डा साँस लिया, और उसी सिलसिले में कहता रहा—'आड़ी, जाती बेर के सब वादे भूल गए ? तुमने एक कागज भी न लिखा। मैं यहाँ किसी से पढ़वा लेता। मैं कई बेर शहर गया, तुमसे मिलने की कोशिश की, पर न मिल सका। दूकान पर तुम मिले नहीं, पूछता-पूछता स्कूल तक गया। वहाँ की शान-शौकत से डरकर मैं तुम्हारा नाम भी न ले सका। चपरासी ने मुझे मारकर बाहर निकाल दिया···'

अहकार से चूर्ण, जमींदार के ग्रेजुएट बेटे की करुणा जागने की आवश्यकता नहीं पाती थी। सहसा कोई मेरे पैरों में आ लेटा। अँधेरे में पहचान न सका। चुन्नी ने उसे जान लिया। बोला—'यह मेरी बहन है बाबू साहब—वही, जिसके साथ आप रोज ब्याह किया करते थे, और गाँववालों की बदनामी की जरा परवा न करके जिसे बहुत-सी चीजें ला दिया करते थे। आपके शहर जाने के बाद हमने घोट-घाटकर इसका ब्याह कर दिया था। यह ब्याह कराना नहीं चाहती थी। एक दिन मैंने अकेले में पूछा, तो इसने उस आदमी के साथ ब्याह करने की इच्छा प्रकट की, जिसे मैं बौने के लिए चाँद समझता हूँ, और जिसका नाम आपके सामने लेने की मेरी हिम्मत नहीं पड़ती।···खैर, शादी हो गई, पर बरबादी भी साथ-ही हो गई। ससुराल में एक दिन इसने सुख नहीं पाया। स्वामी की सेज पर कभी इसने पैर न धरा। इसने कसम खाकर मुझे बताया। इस पर इसके मरद ने इसे बेहद मारा। तब लठिया हाथ में लेकर मैं और बाबा (पिता) इसे लिवा लाये। हमने और कहीं कराव कराने की कोशिश

की, पर इसने एक न मानी। बस, यही कहना चाहता था। अब तुम मेरे आड़ी नहीं हो, इसलिए तुम्हें सलाम करता हूँ।'

कहकर चुन्नी गायब हो गया।

चाँद खिल चुका था। चाँदनी में किताब पढ़ी जा सकती थी। चुन्नी दूर जाता हुआ दिखाई दिया। चारों तरफ सुनसान चाँदनी थी। सहसा मोजे में होकर आँसुओं ने मेरे पैरों को भिगोया। तब एकदम मैं पीछे हट गया।

शायद उसे लग गया। मुँह से उसके चीख निकल पड़ी। चोट शायद जोर से लग गई।

कपड़े उसके गन्दे और चिथड़े थे। मन की करुणा बहुत कड़ी हो चुकी थी। उसे रोते देखा था, तो विरक्ति हुई थी, अब उसे चोट मारकर लज्जित होने के बजाय मैं उस पर कुपित हो गया। आखिर मेरे द्वारा ऐसा गुनाह होने का मौका उसने मुझ क्यों दिया ? छि: ! गन्दी लड़की।

शहर में मेरे लिए रिश्तों की बाढ़ आ रही थी। बहुत-सी मेरी इन्हीं आँखों के सामने घूम रही थीं। यह लड़की ! छि: ! गन्दे कपड़े ! मुँह से लार टपकती हुई ! सड़ी-सी चुनरिया ! गन्दी-सी घघरिया ! सिर में गर्द भरी हुई ! छाती में गुदने गुदे हुए। (चूनरी परे जा पड़ी थी, इसलिए छाती भी दिखाई दे गई थी)।

मेरा मन क्षोभ और घृणा से भर उठा। मैंने चारों तरफ देखा और भागने के लिए कदम उठाया। अकस्मात् उसने सिर उठाया। अब इस स्थिति में हूँ, कि कह सकूँ—कि वर्षों की तपस्या में जलकर सौन्दर्य का सारा रस वह सुखा चुकी थी। उस वक्त मन में कहा—'छि: चुड़ैल !'

जी, तो सिर उठाकर उसने कोई चीज मुझ पर फेंकी। मुझसे लगकर वह जमीन पर गिर पड़ी। मैं एक बार चिहुँक उठा, फिर ध्यान-से देखा—उन्हीं कौड़ियोंका, तागे में पिरोया हुआ हार था, जो मैंने माता-पिता की चोरी से समय-समय पर ले जाकर उसे दी थीं।

जाने क्या समझकर वह हार मैं लेता आया। अब वह मेरी मेज की दराज में रखा है। कभी-कभी उस पर नजर भी पड़ जाती है।

छि: ! पागल लड़की !···क्यों पाठक, भला वह पागल थी, या मैं पागल हूँ ?

पाँच रुपये का कर्ज

१

उस दिन धोती पहने एक सज्जन ने आकर कहा—मैंने सुना है, आप उर्दू में प्रकाशन करने जा रहे हैं ?'

मैंने जवाब भी न दिया था, कि उन्होंने झट फिर कहा—'मैं अभी-अभी 'चन्द्रगुप्त प्रेस' में बैठा था—वहाँ आपकी किताबें छपती हैं न—कि जिक्र छुआ गया, आप अपनी किताबों का उर्दू-अनुवाद कराना चाहते हैं। अगर सचमुच आपका वैसा इरादा हो, तो मेरी खिदमद…।'

मैंने कहा—'जी, इरादा तो बेशक था…प्रेसवालों से एक दिन जिक्र भी किया था, और एक अच्छे अनुवादक की तलाश करने को भी कहा था…।

मेरे वाक्य की 'तो' और 'भी' से वह उत्तरांश जानने को उत्सुक हुआ, और जब मैंने बताया कि किसी कारण-वश विचार स्थगित हो गया है, तो सूखी हँसी हँसकर बोला—'खैर, तो कुछ कहना ही बेकार है।'

तब तुरन्त ही 'अच्छा तो आदाबअर्ज' कहकर ऊर्ध्व गति का उपक्रम किया ही था, कि मेरी स्वाभाविक व्यावसायिकता जाग उठी। बोला—'जी, अपनी तारीफ तो कीजिए। कहाँ से आना हुआ ?'

जवाब जब दे देना चाहिए था, उससे कोई दो सेकंड ज्यादा देर लगाकर वह बोला—'जी' नाम मेरा दीनदयाल है, इलाहाबाद के एक प्रेस में नौकर हूँ; हिन्दी से उर्दू और उर्दू से हिन्दी में अनुवाद भी करता हूँ। बस, यही मेरी तारीफ है।' आखिरी वाक्य कहते-कहते फिर उसके ओठों पर हँसी दिखाई दी।

आदमी में कुछ खासियत मालूम हुई, इसलिए मैंने बात शुरू कर दी। तब तो बहुत-सी बातें मालूम हुईं। एक प्रसिद्ध नाटककार महोदय उनके पिता थे। जब मैंने पूछा—'आप उनके पास क्यों नहीं रहते?' तो झट जवाब दिया—'जब खुद कमा सकते हैं, तो उन्हें क्यों तकलीफ दें?'

उसने और मैंने साथ ही अनुभव किया कि मैं उसकी बात से प्रभावित हुआ हूँ। जब मेरी बातें खत्म हो चुकीं, तो वह बोला—'आपने कुछ किताबें भी तो छापी हैं?'

'जी हाँ,' कहकर मैंने नौकर को संकेत किया। उसने किताबों का सेट मेज पर ला रखा।

'बड़ा सुन्दर प्रकाशन है!' उसने देखते ही कहा—'अच्छा, देखिए, मैं अपने पुस्तकालय के लिए एक-एक प्रति लेना चाहूँगा।'

अब मैं घबराया। व्यर्थ पचीस-तीस रुपये का माल हज्म करना चाहता है! बात टालने की गर्ज से बोला—'जी, आप···आपका पुस्तकालय भी है? निजी, या सार्वजनिक?'

उसने मेरा भाव ताड़कर कहा—'है तो निजी,' पर और लोग भी आ जाते हैं। हाँ, तो आप सब पुस्तकों की वी० पी० कर दीजिएगा।'

सुनकर चैन-सा पड़ गया। पर तुरन्त सम्भलकर बोला—'खैर, वह तो हो जायगी,···हाँ, यह बताइए, इलाहाबाद में···आजकल बाजार कैसा है?'

मन के भाव छिपाने के लिए जैसा बेढंगा प्रश्न किया गया था, शायद उसी तरह का कुछ जवाब भी दे दिया गया।

दो मिनट बाद ही पता वगैरह लिखवाकर वे विदा हो गए।

पार्सल उसी वक्त बँधवा लिया, वी० पी० अगले दिन जाती थी। मैनेजर साहब से कहकर रोजनामचे में नाम भी लिखवा दिया।

२

अगले दिन दस बजे वे फिर आ-मौजूद हुए। इस बार पतलून में थे। चेहरा उदास था। चुपचाप कुर्सी पर बैठ गए।

मैं एक ग्राहक से बात कर रहा था। थोड़ी देर में सौदा तय हो गया,

और उसने ५५ रुपये के नोट मुझे दिए।

मैनेजर साहब किसी काम से भीतर चले गए थे, कि उनका मुँह खुला। बोले—'वह वी० पी० अभी भेजी तो नहीं होगी?'

'मैं डरा, ऑर्डर कैन्सिल हुआ। झट बोला—'भेज ही रहा था, क्या आप खुद ले जायेंगे?'

'खुद?' उसने कुछ सोचकर कहा—'खुद ही ले जाऊँगा; रुपया मनी-ऑर्डर से भेज दूं?'

'मनीऑर्डर से?' मैंने इधर-उधर करके कहा—'आप कब तक ठहरेंगे?'

'बस, शाम को जा रहा हूँ।'

'मेरा मतलब है, दो किताबें अभी तैयार नहीं हैं, कल तक···अरे दफ्तरी······'

दफ्तरी के आने के पहले ही उसने कहा—'खैर' तो आप रेल-पार्सल-द्वारा भेज दीजिएगा। देखिए पोस्ट-पार्सल से दाम ज्यादा खर्च होंगे, रेल से भेजें; बिल्टी की वी० पी० कर दें।···और हाँ, पैकिंग और रजिस्ट्री के के दाम हमसे न लगायें।'

'अच्छा!' मैंने व्यापारिक मुस्कान फेंककर कहा, 'आपकी आज्ञा कैसे टाली जाय? और हाँ, देखिए, कल एक बात कहना भूल गया था। हमारे यहाँ बाहर की पुस्तकों का भी स्टॉक रहता है। कहिए तो कुछ दिखाऊँ? इसी पार्सल के साथ भेज दी जायेंगी, खर्चा भी कम लगेगा।'

'साहब, क्षमा कीजिए!' उसने एकदम बेहद नरम होकर कहा, 'जो किताबें जहाँ से छपें, वहीं से मँगवानी चाहिए। मेरी तो यही नीति है।'

'ठीक है।' मैंने झट दाँत निकाल दिए, 'वास्तव में यही नीति होनी चाहिए। ऐसा न होने से छोटे प्रकाशकों को उचित प्रोत्साहन नहीं मिलता।'

इसी विषय में और दो-एक बातें हुईं। जब रंग कुछ जमा नहीं, तो मैंने पूछा—'आप आज कुछ उदास जान पड़ते हैं?'

'जी, कुछ नहीं,' उसने जैसे चौंककर कहा, 'हाँ, यह बताइए, कितने की वी० पी० आप कर रहे हैं?'

मैंने पूछकर बताया—'सत्ताईस रुपये, सात आने की—खर्चा नहीं लगया है।'

'धन्यवाद !' उसने कहा—अच्छा, अब एक कष्ट आपको देना चाहता हूँ। है तो संकोच की बात, पर मेरी आदत रिश्तेदारों के आगे झुकने की नहीं है। वैसे यहाँ कई जगह सम्बन्ध है। पर आप ऐसा कीजिएगा, पाँच रुपये मुझे दे दीजिए; ये रुपये भी इसी वी० पी० में जोड़ दीजिए।'

अब तो मेरे कान खड़े हुए। मैंने टालने के इरादे से कहा—'रुपये तो साहब, इस वक्त फालतू नहीं हैं।'

'तो जो फालतू हों, वह दे दीजिए। ढाई रुपया मेरे पास है, दो रुपये तेरह आने और चाहिए।

कहते-कहते वह ज्यादे उदास हो गया।

'क्या मतलब ?' मैंने पूछा—'क्या जरूरत आ पड़ी ?'

'जी, इलाहाबाद तक के लिए किराया···'

'क्या हुआ ? बताइये तो ?' पूछने पर उसने ऐसी आवाज से कहा—'साहब, क्या बताऊँ, मेरी Folly है।'

मैंने आग्रह किया तो उसी ढंग से बोला—'क्या बताऊँ—I lost my purse; आज आठ बजे तक तो थी; कुछ फल खरीदे थे। फिर दस मिनट बाद देखता हूँ तो गायब !'

फिर भी मैंने उसे टालना ही चाहा। पर अठाइस रुपये की किताबें बिक रही थीं ! यह लोभ बड़ा घातक था। सोच-विचारकर मैंने कहा—देखिए, मुझे बड़ा खेद हैं; ऑफिस में तो फालतू रुपया है नहीं; कुल सत्तर रुपये के करीब हैं, सो शाम को सौ रुपये प्रेस में भेजने हैं। आप एक काम कीजिए। बाजार में हमारी दूकान है; मैं चिट्ठी लिख लेता हूँ, वहाँ से रुपये आपको मिल जायेंगे।

बिना एक खास निशान बनाये, दूकानवाले मेरी चिट्ठी पर भी किसी को धेला नहीं दे सकते थे। ऐसे ही मौकों के लिए उन्हें पहले से साध लिया गया था।

उसने तुरन्त ही कहा—'और जो दूकान पर नहीं मिले ?'

मैं बोला—'अजी, मिलेंगे क्यों नहीं, क्या दो-चार रुपये भी न होंगे ?'

क्षण-भर रुककर उसने कहा—'साहब, मैं भले घर का लड़का हूँ, इस वक्त मुसीबत में पड़ गया हूँ । आपके सामने हाथ फैलाते ही मैं शर्म के मारे मरा जरा जा रहा हूँ, अब मुझे दूकान पर भेजकर ज्यादा जलील न कीजिए ।'

मैं द्रवित हो गया । फिर भी चालाकी ने साथ न छोड़ा—'तो इसमें हर्ज क्या है ? देखिए न, यहाँ तो फालतू है नहीं, शाम को प्रेस भेजना है ।'

'आप इस वक्त यहाँ से दिलवा दीजिए । फिर शाम तक आदमी के हाथ दूकान से मँगाकर इसमें मिला लीजिएगा ।'

अब तो सब नाके बन्द हो गए । एक मिनट में कई बातें मन की आँख को दिखाई दे गईं । अठाईस रुपये की वी० पी० है । दूकान पर न मिले, तो फिर यहाँ आयेगा ! और इतने प्रसिद्ध नाटककर का लड़का, ऐसा स्वाभिमानी, पुस्तकों का ऐसा शौकीन, भविष्य में मुझसे लाभ की आशा रखने वाला—क्या चार-पाँच रुपयों के लिए बेईमानी कर जायेगा ? और फिर बातों से भी कहीं जरा से सन्देह की भी गुँजाइश नहीं मिलती ।

तब सोच-विचारकर मैनेजर साहब से पाँच रुपये का एक नोट उसे दिलवा दिया । साथ-ही-साथ यह भी कहा—'यह वी० पी० तो भिजवा दूँ न ?'

'वाह ! क्यों नहीं ?' उसने हँसकर कहा—'आपका यह उपकार जन्म भर न भूलूँगा ।'

और चल दिया ।

३

वी० पी० भेज दी गई और चार दिन बाद वापस आ गई । मुझे खबर मिली तो माथा ठोक लिया । बिल्टी भिजवा दी इलाहाबाद के एक एजेण्ट के पास और सोच-विचारकर नम्र भाषा में एक चिट्ठी दीनदयाल साहब को लिखवा दी । एक सप्ताह बीता और कोई जवाब नहीं । दूसरी चिट्ठी

लिखी गई, उसका भी कोई नतीजा न हुआ। बात बहुत साधारण थी, पर तबियत परेशान हो गई। मुफ्त में इस तरह पाँच पैसे की चपत भी कैसा दुःख देती है, भुक्त-भोगियों को इसका अनुभव है।

फिर कोई आधा दर्जन चिट्ठियाँ गईं—उत्तरोत्तर सख्त और लानत से भरी हुई। पर किसी से न कुछ होना था, न हुआ।

पाँच रुपये की बात किसी मित्र को भी तो नहीं लिखी जा सकती थी और भला कौन पाँच रुपये के लिए तकलीफ उठाने को तैयार होता? बेवकूफी तो सरासर अपनी ही थी।

आखिर मन में पेंच-ताव खाकर वह बात भुला देनी पड़ी और यह सोचकर सन्तोष किया, कि चलो शिक्षा मिली। रकम बट्टे-खाते में लिखवा दी गई।

बहुत दिन बाद एक बार इलाहाबाद जाने का मौका मिला। स्टेशन पर उतरे तो उन पाँच रुपयों की भी याद आ गई। सोचा, वक्त मिला तो उनकी भी खबर लेंगे। अब न खेद बाकी रहा था, न क्षोभ। न मन में पेंच ताव खाता था, न दाँत पीसता था। पिछली बेवकूफी पर जो एक तरह का श्लेष अपने प्रति अपने ही मन में पैदा हो जाता है, वही इस समय था।

जिनके यहाँ ठहरा था, वे साहित्यिक आदमी थे। सुबह से शाम तक सैकड़ों छायावादी और गल्पकार दिखाई दे गए। वहीं सब लोगों से मेरा भी परिचय हो गया।

शाम हो रही थी कि एक सज्जन ने प्रवेश किया। सिर उठाकर देखा तो दीनदयाल! पतली धोती, रेशमी कुर्ता, रेशमी दुपट्टा, सिर पर खद्दर की टोपी, मुँह में पान।

उसने जितने उत्साह से मेरा अभिवादन किया, उतनी ही रुखाई से मैंने जवाब दिया। इस रुखाई पर दृष्टिपात किये बिना ही हँसते-हँसते कहा—'कहिए, प्रसन्न तो हैं? मुझे तो वाजपेयीजी से खबर मिली। तुरन्त दौड़ा आया हूँ। आपने मिलने की बड़ी ही लालसा थी।'

एक बार तो पाँच रुपये की बात मुँह पर लाने को हुआ, पर फिर एक संक्षिप्त-सा उत्तर देकर चुप रह गया।

उसने कहा—'अच्छा, अब आप मेरे साथ चलिए। कुछ नहीं सुनूँगा,

आपको मेरी महमानी कबूल करनी पड़ेगी। चलिए, एकदम खड़े हो जाइये।'

अब तो उसकी बात ने चौंका-सा दिया। जवाब भी अब सम्हलकर देने लगा।

धीरे-धीरे रंग चढ़ने लगा और जिनके यहाँ ठहरा था, उनसे विदा लेकर चल दिया।

पाँच रुपये की याद अब बार-बार आने लगी थी।

बाहर एक नई घोड़ा-गाड़ी थी। जाकर उसमें बैठे। अभी मैं इसी सन्देह में पड़ा हुआ था कि गाड़ी का मालिक वही है, या कोई और, कि उसने खुद ही कहा—'कहिए, पसन्द आई आपको ? परसों ही तो खरीदी है। रुपया तो ज्यादा लग गया, पर चीज मन-माफिक मिल गई।'

बात ज्यादा न हो पाई। मैं तो इस चक्कर में पड़ा था कि यह कैसा गोरख-धन्धा है ! जिस आदमी के विषय में जाने क्या-कुछ सोचा गया था और दफ्तर के कमरे में कर्मचारियों के आगे, वी० पी० वापस लौटने पर जिसे जाने कितनी गालियाँ दी गई थीं और दुनिया-भर के सबसे बड़े गण की उपाधि से विभूषित किया गया था, वह क्या घोड़ा-गाड़ी पर चढ़ता है ?

घर पहुँचे, तो आँखें फट गईं। वह शानदार हवेली, कि जिसका नाम ! दर्जनों नौकर-चाकर इधर-उधर घूम रहे थे। हवेली का कुछ हिस्सा किराए पर उठा हुआ था, बाकी में आप रहते थे। बैठक तो इतने अमीराना ढंग से सजी हुई कि आँखें चौंधियाँ गईं। सभी चीज से अमीरी और शान टपक रही थी।

थोड़ी देर बाद अँगरखा-पगड़ी धारण किए हुए एक वृद्ध पुरुष ने कमरे में प्रवेश किया। उन्होंने सहज भाव से मेरी ओर ताका। मुकुन्दलाल ने उनसे कहा—'मेरे एक मित्र हैं; इलाहबाद सैर के लिए आए हैं।' उनका परिचय मुझे उसने नहीं दिया, और दो-चार मिनट बाद ही मुझे लेकर वह कमरे से बाहर हो गया।

दूसरे कमरे में पहुँचकर उसने नौकर के हाथ खाना मँगवाया। मैं बड़ा हैरान था, और आपने-आपको मन ही मन में धिक्कार रहा था।

क्यों उस पर ऐसा अनुचित सन्देह किया, और क्यों ऐसा निन्दनीय पत्र-व्यवहार किया ?

इसके बाद उसने कहा—'आज थियेटर में चलेंगे; सीटें रिजर्व करा ली गई हैं।

मैंने खुश होकर कहा—'अच्छी बात है।'

मुझे कुछ काम था, इसलिए कुछ देर के लिए जाना चाहा। उसने रोका, पर मैं तुरन्त लौटने का वादा करके चला आया।

जिनके यहाँ ठहरा था, लौटकर वहाँ आया, तो देखा—बैठे हुए वे कई मित्रों के साथ बातें कर रहे हैं। देखते ही हँसकर बोले—'कहिए, साहब, इनसे कब की दोस्ती थी ?'

मैंने गौरव से फूलकर कहा—'बहुत पुराने दोस्त हैं।'

एक नव-परिचित छायावादी मित्र ने कहा—'शुक्र है ! एक तो मित्र मिला !'

मैंने चौंककर पूछा—'क्या ?'

'अरे साहब, इसका तो मित्र बनना भी नर्क में जाना है !'

'क्यों ?'

तब उसकी जो कहायियाँ सुनीं, उससे दिल थर्रा गया। किस-किस को कैसा-कैसा धोखा दिया, वह सब सुनने के बाद मैंने भी अपनी पाँच रुपये की बात कह दी।

इस पर सब खिलखिला पड़े।

जब उस शानदार हवेली, और नई गाड़ी का जिक्र किया तब तो वह ठहाका पड़ा, कि मेरे होश उड़ गये।

उन्हीं छायावादी महोदय ने सबको लक्ष्य करके कहा—'आजकल तो उस बुड्ढ़े मारवाड़ी पर जाल फेंक रहा है न ! शायद गोद बैठना चाहता है !'

'अजी बुड्ढे का मतलब है कुछ; तुम नहीं जानते !'

किसी कारण बात वहीं दब गई। जब फिर छिड़ी, तो प्रकरण बदल चुका था।

४

मित्र-मण्डली उठ गई तो मन सोच में पड़ गया। दीनदयाल की बात यहीं रह गई थी। किस मारवाड़ी को किस फन्दे में फँसाया है, इसका खुलासा न हो सका। मन की उत्सुकता बुझकर रह गई।

मैंने सोचा—लोक-मत की कदर जरूर करनी चाहिए, पर उस पर सोलह-आने भरोसा कर लेना भूल है। सब आदमी शठ नहीं होते; जो होते हैं, वे भी हर-किसी के साथ शठता नहीं करते। बाँबी में घुसते वक्त साँप को सीधा होना ही पड़ता है। माना, दीनदयाल मेरे साथ छल कर चुका है पर वह छल था, या क्या था—इसका निश्चय नहीं। उसका पीठ-पीछा है, बात ईमानदारी की होनी चाहिए। अगर अब भी कुछ छल उसके मन में होता, तो सबसे पहले पाँच रुपये की बात छेड़ता। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है। यह तो मुमकिल नहीं कि उसे उन रुपयों की याद न हो पर मालूम ऐसा होता है, वह उसे अधिक महत्व नहीं देता। ढलती-फिरती छाया है; शायद तब पाँच रुपये न दे सका हो, जवाब शर्म से न दिया हो। अब वक्त बदल गया हो। तकदीर! शायद उस अहसान का बहुत बड़ा बदला देना चाहता हो। ऐसे आदमी अक्सर ऐसा करते सुने गये हैं।

सुनी हुई और बीती हुई घटनाओं को याद की तख्ती पर खोदने की कोशिश करने लगा।

मुमकिन है, सौ दो सौ किताबें खरीद ले। इधर अखबार निकालने का विचार है, शायद उसी का संरक्षक बन जाय! रुपया है! ऐसे आदमी की दोस्ती ठुकरानी नहीं चाहिए। दुनिया की बात का इतबार नहीं। और फिर बुरा होगा अपने घर का, मेल-जोल में क्या हर्ज है! अपना बिगड़ता क्या है! कोई दूध पीते नहीं कि गले की हँसली उतर जाएगी। ऐसा कुछ पहलवान भी नहीं कि जबर्दस्ती कुछ करा ले! और जाना है थियेटर! अजी यहाँ अच्छे-अच्छों को चूना लगाया है, बच्चा अपना बिगाड़ क्या लेंगे

चलेंगे।

सोचा चलेंगे, और चल दिए।

ड्योढ़ी पर खड़े मिले। देखते ही खिल गए। करीब-करीब छाती से

लगाकर बोले—'आखिर आ गए ! मैं तो खुद उधर जाने की सोच रहा था। गुस्ताखी माफ, आपने दिल्ली की नाक रख ली !'

'कैसे ?' पूछने पर उन्होंने कहा कि मेरी वादा-खिलाफी देखकर वे दिल्ली-निवासियों के विषय में एक बुरी धारणा को मन में स्थान देनेवाले ही थे।

गाड़ी सामने खड़ी ही थी। दोनों बैठे। प्रभुत्व-भरे भाव से दीनदयाल ने कहा, '···थियेटर !'

चाबुक की कोपल पीठ से छूते ही घोड़े हवा हो गए।

सहसा मुकुन्दलाल ने कहा—'यार, एक तकलीफ दूँगा।'

'तकलीफ' शब्द सुनते ही मेरे कान खड़े हो गए। खड़े होकर कानों में मानो कोई अप्रिय बात सुनने की तैयारी कर ली।

पर मालूम हुआ—बात बहुत साधारण थी।

उसने कहा—'मेरी 'वाइफ' थियेटर देखना चाहती है।'

मैं बोला—'तो दिखाते क्यों नहीं ?'

'पर मुझे शर्म लगती है। मैं उसे प्यार करता हूँ, पर यह शर्म उसके प्यार की खातिर नहीं करने देती। कम्बख्ती की मार—जोश में आकर आज उससे दावा कर बैठा ! अब पछता रहा हूँ। थियेटर में कई बुजुर्ग लोग आयेंगे। भाई, मेरी रूह काँपती है। कुछ मदद करो दोस्त।'

'क्या मदद ?'

एक क्षण विलम्ब के बाद उसने कहा—'बुरा मान जाओगे।'

'नहीं।'

'उसे कुछ देर के लिए अपनी बहन बना लो।'

मैं बड़ा झेंपा, पर सम्हलकर बोला—'क्यों ?'

'बस, कोई पूछे तो कहना, मेरी बहन···माफ करना···'

मैंने क्षण-भर सोचकर कहा—'बात कुछ समझ में नहीं आती।'

उसने चेहरा उतारकर कहा—'खैर, जाने दो।'

मुझे बड़ी शर्म लगी। बेचारे का दिल कुन्द कर दिया। मेरा बिगड़ता क्या है ! आखिर दोस्ती करनी है, तो उसका हक भी निभाना चाहिए। सिलसिला चलाने के ख्याल से बोला—'लेकिन मुझसे पर्दा किया—तो ?'

'ओह !' उसने मेरे हाथ पर हाथ मारकर कहा—'यही तो फजीता है। पर्दा करती, तो मैं ही न ले जाता। कहती है, घर में घुटकर जिन्दगी काटना मंजूर, मगर बाहर निकलूँगी तो 'लेडी' बनकर! बड़ा ही जी जलता है! क्या बताऊँ यार, बड़ी बेमेल जोड़ी मिली है। कोशिश की, मगर मेरे 'विउज' उससे न मिल सके। अच्छा, बोलो···फिर, आजकल वह अपने मामा के घर है। वह सामने रहा घर! कहो, तो गाड़ी रुकवाऊँ।'

कहा गया, और गाड़ी रुकवाई गई।

घण्टे-भर बाद एक सुन्दरी ने गाड़ी में कदम रखा। रेशमी साड़ी थी। गर्दन से नीचे तक एक कीमती शॉल दोहरा करके ओढ़ रखा था। जूते, मोजे, जम्पर, जेवर— सब अपटु-डेट लेडी के अनुकूल थे।

उसने मुझे 'नमस्ते' किया, और दीनदयाल को बीच में देकर सीट के परले किनारे पर बैठ गई।

५

थियेटर हॉल में ज्यादा आदमी नहीं थे। हम लोग ऑर्चेस्ट्रा में जाकर बैठे। इस दर्जे में हमारे अतिरिक्त कई आदमी थे। जान पड़ता था— टिकट लेकर कोई नहीं आया, सब पर 'पास' थे। कोई अखबार का रिपोर्टर था, कोई नाटककार का मित्र था, कोई पुलीस-कर्मचारी था। यानी, उनका कुर्सियों पर अकड़-फैलकर बैठना, रह-रहकर आगे-पीछे देखना, और बड़े गर्व से साथियों के साथ बात करना—और किस सत्य को सिद्ध करता था, सिवा इसके कि सब मुफ्तखोरे थे?'

हम पहुँचे थे कि उन्हीं मारवाड़ी सज्जन ने प्रवेश किया। दीनदयाल की देखा-देखी मैंने भी उन्हें अभिवादन किया। आकर वे मेरी बगल में बैठ गये।

उनकी फबन अजीब थी। रेशमी अचकन, पगड़ी, चूड़ीदार पाजामा, पम्प-शू, मूछों और बालों में खिजाब लगा हुआ। बुढ़ापे को धोखेबाज़ बनाकर जवानी की शकल में पेश करने की कोशिश की गई थी।

बूढ़े ने आते ही मुझसे बातें शुरू कीं। दीनदयाल के और मेरे बीच की कुर्सी पर देवी विराजमान थीं। बूढ़ा मेरी बायीं तरफ आकर बैठा। बूढ़े

को मुझसे बातें करते देख, देवी ने पल-भर के लिए मुँह फेर कर बूढ़े को प्रणाम किया, और सिर का पल्ला कोई आध इंच आगे सरका लिया।

बूढ़े ने हँसकर कहा—'आप तो दीनदयाल के दोस्त हैं?'

'जी हाँ।'

कुछ देर ठहरकर उन्होंने कहा—'डिरामा तो आज सुनते हैं अच्छा है, पर पब्लिक कुछ नहीं आई।'

मैंने रुखाई से कहा—'लोगों की रुचि है।'

फिर उसने कुछ विलम्ब के बाद कहा—'दीनदयाल आदमी तो अच्छा है।'

मैंने समझा—बूढ़ा बहुत ओछा आदमी है। गम्भीर पुरुष इस तरह की बातें नहीं करते। टालने की गर्ज से बोला—'दुनिया में सभी अच्छे हैं, और सभी बुरे हैं।'

दीनदयाल ने शायद अपना नाम सुन पाया था। बूढ़े के बराबर की कुर्सियाँ भी खाली थीं। दीनदयाल उठकर उसके पास आ बैठा। अब मैं और बूढ़ा बीच में और दोनों सिरों पर दीनदयाल और वह देवी हो गई।

मेरी बात सुनकर बूढ़ा दाँतों-तले जीभ दबाकर बोला—'थारा बेटा जीता रहे, साहेब, बात आपने एक लाख रुपए की कही है। दुनिया में आके कौन अच्छा रहे है? यू तो साहेब, काजर की कोठरी है। या मैं चतर-सुजान भी रेख लगा जायँ हैं।'

दीनदयाल ने टोका—'क्या मामला है?'

मैं तो चुप रहा, पर सेठजी ने कहा—'इक बात थी। बाबू साहेब ने कही—दुनिया में कोई अच्छा नहीं। मैंने कही दुनिया बड़ी बुरी है, यामें कौन दूध धोया रह सके है। और भैया, सबसे पहले अपनाआपा बुरा है।'

बूढ़े की अनर्गल बातों ने अरुचि पैदा कर दी। यह भाव मेरे चेहरे पर प्रकट भी होने लगा, पर बूढ़ा उस पर दृष्टिपात न कर सका।

बात का सिलसिला टूटे एकाध मिनट गुजरी, कि बूढ़े ने मेरे दाँयें बैठी हुई दीनदयाल की स्त्री को देखकर कहा—'यू कौन हैं?'

मैं बड़ा शर्माया। हद दरजे कीअशिष्टता थी। पर जवाब न देना इससे

भी ज्यादे अशिष्टता होती। उधर दीनदयाल ने इशारे से कहा—'दोस्त, इज्जत रखना।'

मैंने कहा—'जी, मेरे साथ आई हैं।'

जरा विलम्ब के बाद पूछा गया—'आपकी कौन हैं?'

बूढ़े पर और दीनदयाल पर बड़ा क्रोध आया, पर वह ऊपर-ही ऊपर इशारा किये जा रहा था—जैसे बात खुल गई; तो मर ही जायेगा, एक बार तो जी में आया, असल बात कह दूं, पर उसने ऐसी सूरत बना ली, कि देखकर बरबस दया आ गई। कहना पड़ा—'जी, मेरी बहन है।'

अब तो प्रश्नों का ताँता लग गया।

'आप तो दिल्ली रहते हैं न?'

'जी हाँ।'

'यहाँ कब आये?'

'आज ही।'

'वह भी आपके साथ आई हैं?'

मन में हुआ—कह दूं, इनका यहीं विवाह हुआ है। पर सोचा, अगर पूछने लगा, किनके यहाँ हुआ—तो फजीता हो जाएगा। इसलिए बोला—'जी हाँ, इलाहाबाद कभी देखा नहीं था; ले आया।'

बूढ़ा मूछों में मुस्कराया। इस मुस्कराहट का अर्थ उस समय मालूम न हुआ।

उसी समय थियेटर शुरू हो गया।

६

मैंने थियेटर देखने की कोशिश की, पर अनुभव किया—कि मेरे तीनों परिचितों में से किसी का ध्यान थियेटर की तरफ नहीं है। बूढ़ा आँखें बचा-बचाकर मुकुन्दलाल की स्त्री—जी हाँ, दीनदयाल की स्त्री ही की तरफ देखता था, दीनदयाल कभी मुझसे और कभी मेरी अस्थायी बहन से आँखों-ही-आँखों में कुछ कह देना चाहता था। मैं इस लीला को देखता था, और खाक न समझता था।

पहला अङ्क चल ही रहा था, कि दीनदयाल सेठजी का हाथ पकड़कर

बाहर चला गया। मेरा शरीर काँप-सा गया। बगल में वह महिला बैठी हुई शौक से स्टेज पर दृष्टिपात कर रही थी। मैंने कनखियों से एक बार उसे देखा। फिर तुरन्त ही अपने को धिक्कारकर बैठ गया। इसे कोई मेरी कमजोरी कहे, कि औरत की खूबसूरती की मैंने मन-ही-मन तारीफ की।

थोड़ी देर बाद दीनदयाल और सेठ साहब लौट आए। मैंने दीनदयाल का चेहरा देखा। उसकी आँखें झिपझिपा रही थीं। माथे पर पसीने की बूँद थी। ऐसा लगता था, दिल में कुछ चीज दबाकर छिपाई हुई है, जो ऊपर निकल पड़ने के लिए जोर कर रही है।

दोनों आकर बैठे। अब की बार सीट बदल गई। दीनदयाल मेरे निकट था, सेठजी उससे परे। उन्होंने आगे झुककर दो-एक बार मुझसे बोलने की कोशिश की, पर फासला ज्यादा था; रह गए।

कुछ मिनट बीते। तब अकस्मात् उन्होंने कहा—'डिरामे की जैसी तारीफ सुनी थी, वैसा नहीं है।'

दीनदयाल ने कोई अनुकूल उत्तर दिया। मैं चुप रहा।

दो मिनट बाद ही सेठ जी ने फिर रिमार्क दिया—'यहाँ तो तबियत लगती नही; चलो, चलें, वहीं बैठेंगे।'

दीनदयाल ने टालने की कोशिश की, पर सेठ जी न माने।

हारकर हम सब उठे। नाटक यों बुरा नहीं था, पर सेठजी के कहने पर सबकी तबियत उखड़ गई। लेकिन दीनदयाल का चेहरा कह रहा था, इस तरह जाना उसे सबसे ज्यादा नागवार गुजरा है।

वहीं दो घोड़ों की गाड़ी बाहर खड़ी थी। दीनदयाल सामने की सीट पर बैठ गया। गाड़ी थोड़ी दूर चली, कि दीनदयाल ने एक रेशमी थैली मुझे दे दी। मुझे कुछ बोलने का मौका न देकर उसने कहा—'इसे रख लीजिए।'

मैं समझा नहीं, फिर भी कुछ पूछने की जरूरत मैंने नहीं समझी। हाँ इस पर मेरा अचरज जरूर बढ़ा, जब दाईं तरफ बैठे हुए सेठजी ने कहा—'जरा सम्हालकर रखियेगा।'

फिर भी कोई प्रश्न मैं न कर सका। साधारण भाव से कह दिया—'जी, कोई बात नहीं।'

मुझे याद पड़ता है, इसी बीच में दीनदयाल ने कोई बात शुरू कर दी थी, और उसका सिलसिला तब तक खत्म न हुआ, जब तक कि गाड़ी ठहर न गई।

जहाँ ठहरी, वह एक गली थी। सामने ही एक मकान का दरवाजा था। दीनदयाल ने आगे बढ़कर दस्तक दी। दरवाजा खुल गया। तब उसने वहीं से कहा—'आ जाइये।'

सेठजी ने मेरा हाथ पकड़ा, और गाड़ी से नीचे उतरे। मैं क्षण-भर को ठिठका। पर सेठजी साथ थे, और मकान किसी भले आदमी का जान पड़ता था, इसलिए हिम्मत करके भीतर चला गया।

एक सजे-सजाये कमरे में ले जाकर हम लोग बैठाए गए। सहन में थम्भ गाड़कर विवाह का सरंजाम किया हुआ था। कमरे में तिलक-छापे लगाये हुए कुछ लोग बैठे थे। कोने में एक मरियल-सा नाई बैठा ऊँघ रहा था, हमारी आहट सुनी, तो चैतन्य हो गया। पोथी-पत्रा और दूसरे साज-सरंजाम देखकर मैंने अनुमान लगाया, किसी शादी की तैयारी है।

दीनदयाल की स्त्री कमरे में न गई। मैं और सेठजी तकियों के सहारे पास-पास बैठ गए। दीनदयाल ने व्यस्ततापूर्वक हँसकर सेठजी से कहा—'आप बैठिए, मैं अभी आता हूँ।···हाँ जी, पुरोहितजी, मुहूर्त्त कितने बजे का है?'

पुरोहितजी बोले—'बस साहब, लड़की को तैयार कीजिए। देर नहीं है।'

दीनदयाल फुर्ती से चल दिया। मुझे कुछ कहने का मौका न मिला, मिलता भी, मगर सहसा सेठजी ने कोई बात शुरू कर दी।

अब तो वह दिल्लगी हुई, कि याद करते हुए हँसी आती है। दस मिनट, बीस मिनट, आधा घण्टा, एक घण्टा···एक घण्टा बीता, कि मुझसे ज्यादा सेठजी और सेठजी से ज्यादा मैं व्यग्र हो उठा। इस बीच में कई बार उठकर बाहर जाने की मेरी इच्छा हुई थी, पर सेठजी हमेश नई बात निकालकर बैठा लेते थे। दीवालघड़ी ने बताया, कि एक घण्टा बीता। बस, सब तरफ शोर मच गया। पुरोहित चिल्ला उठा—'लड़की को लाओ।' नाई चैतन्य होकर आँखें पोंछने लगा। मैं ऊबकर खड़ा हुआ, कि

सेठजी ने हाथ पकड़ लिया। कहने लगे—'कहाँ चले ? बैठिए।'

उनका भाव देखकर मेरे होश गुम हो गए।

जो चालाकी उस शख्स ने खेली थी, उसे याद करके तबियत फड़क उठती है। आप भी सुन लीजिए।

सेठ······'ओवर-एज' होने पर भी शादी के ख्वाहिशमन्द थे। शहर के सुधारक शादी होने न देते थे। दीनदयाल महाशय ने उन पर डोरे डाले। दिल्ली में किसी लड़की की कल्पना की गई। सेठ साहब से कहा—'फलाँ दिन लड़की का भाई उसे लेकर इलाहाबाद आयेगा, उसी दिन शादी कर दी जायगी।' 3000 रुपये पर सौदा तय हुआ। पर सेठ बगैर लड़की पसन्द किए कौड़ी देना नहीं चाहता था। दीनदयाल लड़की को थियेटर ले गया। यह लड़की, थी मेरठ की एक वेश्या। दीनदयाल से इसकी पुरानी आशनाई थी। दोनो ने मिलकर सेठ को उल्लू बनाया। मुझ गरीब से जिस तरह काम लिया वह सबके सामने है। तीन हजार के नोट उस रेशमी थैली में दीनदयाल को दे दिए गए थे। गाड़ी में थैली मुझे दे दी गई सेठ निश्चिन्त थे, माल मेरे पास है। पर माल-वाल क्या—रद्दी कागज के टुकड़े भरे हुए थे, माल पहुँचा दीनदयाल की जेब में। न 'लड़की' का पता था, न दीनदयाल का। यह मकान तो किराये का था ही, पुरोहित, नाई, नौकर-चाकर सब किराये के। सुधारकों के डर से सेठ साहब खुद चाहते थे, शादी चुपचाप हो जाय।

आखिर सब सिर पटकते रह गए; किसी को धेला न मिला। एक बात कह देनी चाहिए। वह रेशमी थैली जब खोली गई, तो रद्दी कागजों के बीच में से पाँच रुपये का एक नोट निकल आया, जिसे सेठजी ने तुरन्त झपट लिया। उन्हें आशा हुई—शायद सौ का हो, या शायद और कुछ निकले।

पर और कुछ न निकलना था न निकला।

सुननेवाले कहते हैं—वह नोट गलती से रह गया, लेकिन मेरा खयाल है कि मेरा कर्ज चुकाने की कोशिश की गई थी।

रखैल

१

नन्दू एक ऐसा आदमी था, जिसे कुछ लोग बीस बरस की उमर में ही 'फिलॉस्फर' कहने लगे थे। बाप जब तक जिए, उनसे उसकी बनी नहीं; दोनों के दिमाग सदा भिन्न-भिन्न दिशा में चलते रहे। शिक्षा उसकी सिर्फ मैट्रिक तक थी, मगर विचार बड़े ऊँचे गहरे और बड़े मौलिक ! दुनिया को खुश रखने का सबसे सहज तरीका क्या है ?—किसी के खुश होने की चिन्ता न करना ! बड़ा आदमी कौन है ?—जो किसी की बात का बुरा नहीं मानता। सबसे बड़ी बेवकूफी क्या है ?—अपनी बेवकूफी पर आँसू बहाना। सबसे बड़ा सुख क्या है ?—दोनों वक्त रोटी मिल जाना !....

ऐसे ही उसके सिद्धान्त थे। और भी बहुत-सी बातें थीं। 'फिलॉस्फर' कहनेवाले कुछ लोगों की बात कह ही चुके हैं, ऐसे भी कुछ थे, जो उसे खब्ती, पागल और शेखचिल्ली का खिताब दिया करते थे।

आखिर इस सीधे-सादे प्राणी के जीवन-काल के 25 वर्ष बीत गये। अब तक उसने कुछ न किया ?—न ब्याह किया, न रोजगार किया, न बूढ़े बाप को खुश ही किया। अन्तिम दिनों अलबत्ता बाप के पलंग की पट्टी उसके हाथ से छूटी नहीं, और पुत्र का सिर स्पर्श करने के सुखद भाव के साथ ही वृद्ध ने प्राण त्याग किए।

नहीं कह सकते कि यह बात पहले कर देनी चाहिए थी, कि नन्दू मातृ-हीन था। और इसलिए बूढ़े की आँखें मिचते ही वह था—या बाप की बीस लाख की सम्पत्ति।

अब तो ठट्ठ-ठट्ठ जमा होने लगे। जो उसे खब्ती कहते थे, वे भी,

और जो उसकी फिलॉस्फी के मद्दाह थे, वे भी। शोक करनेवाले दरअसल बधाई देने आये थे। सभी सबसे पहले और सबसे आगे अपना चेहरा रखना चाहते थे। सभी के ओठों से हँसी फूटी पड़ती थी। सभी की आँखों में बधाई का गुलाल भरा हुआ था।

पर नन्दू इससे खुश न हुआ। दुनिया की मनोवृत्ति पर उसे दुःख हुआ कोई उसका आँसू पोंछनेवाला न था। कोई उसके दिल की असलियत न जानता था। उसके विषाद पर किसी को ध्यान देने की फुर्सत न थी। लोगों की सहानुभूति के शब्द उसके कान में गोलियों की बौछार-से लगने लगे। सब उसे कपटी, छली, धूर्त समझ रहे हैं!

तब, पिता की मृत्यु के कुछ ही समय बाद वह बाहर निकल पड़ा।

२

लौट-आकर नन्दू ने अनुभव किया, कि अब उसका छुटबछेरा बनकर फिरना समाज सहन न कर सकेगा। ब्याह करने की जरूरत दरअसल अभी तक उसने महसूस नहीं की थी। यदि यह कहें, कि उसका जीवन रसिकता से एकदम शून्य था—तो या तो अन्याय होगा, या अतिशयोक्ति। तबियत उसकी रंगीलेपन से खाली नहीं थी! मगर आदमी के कन्धे पर किसी विरोधी लिङ् के प्राणी का बोझा अनिवार्य है—यह बात उसकी समझ में न आती थी। न उसकी खुली प्रकृति यह गवारा करती थी कि विवाह के खूँटे में बँधकर वह अपनी स्वाधीनता में बाल बराबर फर्क डाले।

अस्तु, रिश्ते आते गए और टलते गए।

मगर बीस लाख बहुत बड़ी चीज है। मित्र कैसे इतने सारे हो गए, और किस तरह ऐसे-वैसे लोगों से उसका दिल मिल गया—यह समस्या उसकी समझ में खाक न आई। फिर—किस आसानी से सिगरेट का धुआँ उसकी आँखों के सुरूर तक, और सिनेमा-थिएटर पुतलीबाई के मुजरे तरफ घसीट ले गए, इसका क्रमबद्ध इतिहास भी कोई नहीं बता सकता। लोगों के प्रति दृष्टिकोण में भी अब अन्तर आ गया। जिनकी इज्जत थी, उनकी खिल्ली उड़ने लगी; जिनसे प्रेम था, उनकी उपेक्षा होने लगी; जिन पर

श्रद्धा थी, उनसे आँखें चुराई जाने लगीं।

और वह गरीब जब एकान्त में सोचा करता कि यह सब प्रलय हो क्यों कर गई, तो उसकी समझ में खाक न आता था—न आता था!

विचारधारा भी उसकी बदल ही गई थी। पुतलीबाई के डेरे पर, या जाम ओठ से छुआकर, अथवा मुसाहबों की मण्डली में उसके मुँह से अकसर निकलता था, उसे बुरा कहनेवाले लोग नालायक हैं! वह अब भी वैसा ही सच्चा, वैसा ही सच्चरित्र, वैसा ही रहमदिल और वैसा ही सहृदय है। वह ढोंगी नहीं है, वह धूर्त नहीं है, वह किसी की बहू-बेटी को बलपूर्वक नहीं उठवा मँगाता, वह किसी गरीब का गला काटकर पैसा नहीं बटोरता!—उसकी इस महानता की समानता संसार में बिरले ही करते हैं।

समर्थकों का कमी न थी!

३

वह आदमी के जीवन में अकसर ऐसी स्थिति आती है, जब वह बदी के साथ भी दुराचार करने को तैयार हो जाता है। ऐसे कुछ बदों का परिचय आपको भी होगा, जो सर्व-सम्पन्न होकर भी अत्यन्त कुपात्र को सर्वस्व सौंपे हुए हैं;—जो एक अति तुच्छ पुंछली को हृदय-मन्दिर की देवी बनाए हुए हैं—जो समस्त ज्ञात पापों का परिचय प्राप्त कर लेने के बाद कल्पनातीत पापों की ओर दौड़ते हैं।

नन्दू ठीक उस स्थिति पर पहुँचा, या नहीं; इसे खोलकर कहने की जरूरत नहीं। पर पुतलीबाई और उसकी बिरादरी अब उसे खींच रखने में अक्षम रहने लगी—शराब के पैग में सादे पानी के गिलास से अधिक महत्व न रह गया—मुसाहबों की मनोरञ्जन-वार्ता में खटास पैदा हो गया।

तब नन्दू ने कार-बार गुमाश्तों के सिर छोड़कर भ्रमण का निश्चय किया, और इस भ्रमण में हर समय और हर जगह 'रोमैन्स' करने की भी उसने ठान ली। यह रोमैन्स उपन्यास का रोमैन्स नहीं, कहानी का रोमैन्स था।--पाया, चक्खा, और फेंक दिया।

दो सूट-केस, एक हैण्ड-बैग, एक वायोलिन, बिस्तर, छड़ी, छत्तरी और पहनने के कपड़े। हाथ में चमकती हुई अँगूठी, जेब में बेशकीमती घड़ी, छड़ी में सोने की मूठ और बक्स और सूटकेस में चाँदी का लोटा-गिलास, रेशमी कपड़ों के कई जोड़े एक कीमती दूरबीन और बहुत-सी ऐसी कीमती और सूफयानी चीजें—जो न हों, तो अमीरों की अमीरी को प्रकट होने में दिक्कत पड़े।

फर्स्ट-क्लास के एक डिब्बे में नन्दू ने तन-तनहा यात्रा आरम्भ की। लोगों ने जब कहा—'नौकर लेते जाओ,' तो लापरवाही से जवाब मिला—'यात्रा का मजा जिसे चौथाई करना हो, वह साथ नौकर रक्खे।'

इस पर किसी ने दबी आवाज से कह दिया—'फिलॉस्फी का प्रकोप अभी तक चले आता है।'

मगर नन्दू की ट्रेन उधर सीटी देकर चल पड़ी थी।

और रोमैन्स शुरू होने का समय भी आ ही पहुँचा।

४

घूमते-फिरते मथुरा आए।

इससे पहले बहुत-सी जगह गए। रोमैन्स भी सभी जगह हुआ।—बिलकुल कहानी का रोमैन्स! सभी जगह का रोमैन्स अलग-अलग तरह का था, पर सबका अन्त होता था—एक रात का मिलन; और कुछ नोटों का खर्च! रोमैन्स नन्दू की दैनिक क्रिया बन गया, जिसका अगला परिच्छेद शुरू होते ही पिछले की याद रखना व्यर्थ समझा जाता था।

खैर, मथुरा पहुँचे।

इस जमाने में हिन्दू-तीर्थों पर पुण्य-संचय कितना होता है, यह कहना शक्य नहीं; बहरहाल पाप झल्लियों में भर-भरकर बखेरा जाता है, और असंख्य नर-नारी भिन्न-भिन्न प्रकार से तीर्थ-स्थानों पर मनचीते करके आते हैं। किसी के बरसों के वचन पूर्ण होते हैं, कोई जीवन के आनन्द का अनुभव करता है, कहीं जी भरकर जी की हौंस निकाली जाती है।

ठीक जन्माष्टी का दिन था। इस दिन मथुरा के अनन्त यौवन का विकास होता है। मथुरा और वृन्दावन के बीच चौबीस घण्टे इक्के, ताँगे,

मोटर, बग्घी और पैदल जनता की आवाजाही लगी रहती है।

इसी सड़क पर नन्दू कुछ साथियों के साथ ताँगे में वृन्दावन जा रहा था।

इन साथियों की एक कहानी थी। उसके होटल में ऐन सामने का कमरा किसी मृगनयनी के कब्जे में था। नजर मिलते-ही नन्दू का रोमैन्स शुरू हो गया। झटपट सामान कमरे में रखकर नन्दू नित्य-कर्म से निश्चिन्त हुआ। इस मृगनयनी के साथ एक मरियल युवक था, जिसके कपड़े-लत्ते साफ, मगर चेहरा बदरंग था। आसार से वह स्त्री का पति जान पड़ता था, पर पति के अधिकार, दर्प या दबंगपन का कहीं लेश भी न था।

नन्दू जब कपड़े पहनकर तैयार हुआ, तो सामने वाले दोनों कहीं जाने की तैयारी कर रहे थे। नन्दू ने केश साफ किये, और आवाज दी—'ऐ बाबू साहब!'

बाबू साहब लपककर आये, और हीरे की अँगूठी पहने हुए, सोने की घड़ी लगाए हुए, भड़कीले रेशमी कपड़ों से आच्छादित गौर-वर्ण नन्दू के सम्मुख रोब में आ गए। गिड़गिड़ाकर पूछा—

'जी, क्या हुक्म है?'

नन्दू के आँख की कोर बीच का फासला लाँघकर मृगनयनी से कला-बाजियाँ खा रही थी। बाल सँवारते-सँवारते कहा—'दियासलाई की डिबिया चाहिए।'

'जी, अभी लाया।'

कहकर वह पत्नी के प्रति—'अरे ओ!' पुकारता हुआ लौट पड़ा।

नन्दू ने एक आह खींची। कैसा पति और कैसी स्त्री! निश्चय ही पति है।

दियासलाई की डिबिया ला दी गई। नन्दू ने एक रुपया उसके हाथ पर धर दिया, और कहा—'होटल के नौकर को बुलाकर एक सिगरेट का बक्स···।'

उसने तत्परता से उत्तर दिया—'जी, मैं ही लाता हूँ।'

कहकर रुपया लिए हुए वह नीचे उतर गया।

अब मृगनयनी को अपने नयनों के तीर फेंकने की स्वाधीनता हो गई।

नन्दू ने बाल सँवारे, पोमेड लगाई, इत्र बसाया और कपड़ों की शिकन दूर की। पर इतनी देर में जी उसका घायल हो चुका था।

इतनी देर बाद सिगरेट का बक्स आया। इसी मृगनयनी का चुम्बक वृन्दावन की सड़क पर ताँगे में उसे घसीट रहा था।

५

आखिर वृन्दावन की सैर हुई; तरह-तरह के सामान खरीदे गए, अमीरी का प्रदर्शन हुआ। नन्दू ने उदारता की हद कर दी।

हीरे की अँगूठी, सुनहरी घड़ी, सोने की मूठ की छड़ी, सभी एक-एक करके खोल-खोलकर प्रदर्शित कर दी गई।

इतनी देर में नन्दू सारी असलियत जान गया। पुरुष का नाम था रामप्रसाद और स्त्री का चमेली। बचपन में विधवा हो गई, और दो बरस से रामप्रसाद के साथ है। रामप्रसाद पहले रेलवे में मुलाजिम था, और अब कई महीने से बेकार है।

नन्दू की लार टपक पड़ी। पर सम्भलकर बोला—'भाई, तुम बहादुर हो। तुमने एक बाल-विधवा का उद्धार करके आदर्श युवक का कार्य किया। मैं तुम्हारा अभिनन्दन करता हूँ। आज से तुम मेरे भाई हो। मैं तुम्हारी मदद करूँगा।'

रामप्रसाद ने गद्‌गद्‌ होकर कहा—'बाबू साहब, चार महीने से नौकरी की तलाश में मारा-मारा फिर रहा हूँ। जो कुछ जमा-जथा थी; खत्म हो गई; अब पन्द्रह दिन से होटल के मालिक की दया पर टुकड़े खा रहा हूँ। यहाँ से छूटना दुश्वार है। जाना चाहता हूँ, तो होटल का मालिक किराया माँगता है। कहाँ से दूँ? अजब कैद में जान फँसी है।

क्षण-भर के लिए नन्दू का सिर झुक गया। कैसा दयनीय प्राणी है!

रामप्रसाद ने उसी सुर में फिर कहा—'अकेला होता तो भीख माँग लाता, अब वैसा भी नहीं कर सकता। दुनिया में कोई हमदर्द नहीं मिलता, मिलता भी है—तो ऊल-जलूल खयाल लेकर!'

नन्दू की नजर चमेली पर पड़ गई। वह कातर नेत्रों से उसे ताक रही थी।

नन्दू क्षण-भर को सिहर उठा।

फिर बोला—'धीरज रक्खो भाई, अब समझ लो—तुम्हारे मुसीबत के दिन कट गये। चाहो तो मेरे साथ चल सकते हो। निहाल कर दूँगा। मेरे यहाँ सत्तर आदमी काम करते हैं। तुम भी वहाँ खप सकोगे। काम मेहनत से करोगे तो उन्नति होगी।'

रामप्रसाद की आँखों में आँसू भर आये। नन्दू ने फिर उसे आश्वासन दिया, पर चमेली को उसने जिस भाव से ताका, उसे हमीं समझ सकते हैं।

कैसा गहरा छल !

६

नन्दू की यात्रा का प्रोग्राम अभी पूरा न हुआ था, इसलिए दोनों प्राणियों को साथ लिए वह भरतपुर, ग्वालियर और फतहपुर-सीकरी होता हुआ आगरा आया।

इस अर्से में सब लोग मिलकर घी-खिचड़ी हो गये थे। नन्दू के गौर वर्ण, स्वस्थ शरीर और अगाध औदार्य पर चमेली हजार जान से मर मिटी थी। रामप्रसाद उसका अदब करता था; और उससे दबता भी था। सच बात यह है कि न चमेली के प्रति उसका स्त्री-भाव रह गया था, न चमेली ही उसे पति मानती थी। नन्दू ने उसे बहुत-से कीमती कपड़े खरीद दिए थे, और उन्हें पहनकर चमेली सदा नन्दू के साथ रहना पसन्द करती थी।

आगरा पहुँचते-पहुँचते चमेली के धीरज का बाँध टूट पड़ने को हुआ। आखिर उसने दिल की बात नन्दू से साफ-साफ कह दी। नन्दू सुनकर हँस पड़ा, और होटल के एकान्त कमरे में उसने चमेली को बाहुओं में कसकर चूम लिया।

चमेली बिल्ली की तरह नन्दू की छाती से चिपट गई, और फिर आँखें नीची करके उसकी हीरे की अँगूठी, सोने की घड़ी मूठदार छड़ी से खेलने लगी।

नन्दू ने मुस्कराकर कहा—'पानी !'

चमेली ने बक्स खोलकर चाँदी का लोटा-गिलास निकाला, और पानी

लाकर दिया। नन्दू ने एक हाथ से गिलास और दूसरे से उसका हाथ थाम-कर पूछा—'एक बात बताओगी?'

चमेली ने आँखें चलाकर कहा—'हाँ।'

'तुम मुझे प्यार करती हो?'

'हाँ।'

'सच?'

'हाँ।'

'कितना!'

'इतना।' कहकर चमेली ने जल-भरा लोटा उसके आगे कर दिया।

नन्दू हँस पड़ा। गिलास उसने मेज पर रख दिया, और चमेली को छाती से लगा लिया।

कहा—'तुम्हें सदा अपने पास रक्खूँगा।—भला?'

'मगर 'वह' कहाँ जायगा?' रामप्रसाद की तरफ संकेत था।

'वह भी रहेगा।'

'कहाँ?'

'हमारे कारखाने में नौकरी करेगा।'

'फिर मुझे कैसे रक्खोगे?'

'क्यों?' कहते-कहते नन्दू का चेहरा फक पड़ गया।

'क्या—रखैल?'

··इसके बाद रामप्रसाद के आने से बात वहीं-की-वहीं रह गई। पर दोनों के दिल चुटीले हो चुके थे। नन्दू बरामदे में टहलने लगा। चमेली पलंग पर पड़ गई।

कहना न होगा, कि इन दोनों के एकान्त-मिलन में रामप्रसाद को कोई आपत्ति न थी।

आगरे की सैर दिन-भर हुई। इतने समय में पिछली घटना करीब-करीब भूल चुकी थी। नन्दू की उदारता फिर जारी हो गई थी, चमेली ठठा-ठठाकर फिर बलैयाँ लेने लगी थी, नैनों के तीर और हँसी-दिल्लगी का फ़ौवारा फिर शुरू हो गया था।

चालीस रुपये की वह साड़ी उस दिन चमेली के शरीर पर ऐसी फबी

कि नन्दू को अब धीरज धरना कठिन हो गया। रामप्रसाद की अनुपस्थिति के लिए, उसका संकेत काफी था। उस दिन वह सिनेमा देखने चला गया। उस सुनसान होटल के कमरे में या तो रेशमी कुर्त्ता-बास्कट पहने नन्दू खड़ा था, अथवा उसी चालीस रुपए की साड़ी में अँगड़ाई लेती हुई चमेली।

नन्दू ने उसका हाथ पकड़कर खींचा। चमेली ने सिसकारी लेकर कहा—'उई ! अँगूठी चुभ गई !'

नन्दू बोला—'इसे तुम्हीं रक्खो।'—कहकर उसने अँगूठी उतारकर उसकी उँगली में पहना दी।

चमेली को तब उसने हृदय से मिला लिया। वह बोली, 'उफ् ! अब घड़ी चुभ गई !'

चेन और घड़ी उसने मेज पर रख दी, और कहा—'यह भी तुम्हारी हुई।'

तब उसने खींचकर उसे पलंग पर बैठा लिया। पलंग हिला तो सिर-हाने से लगाकर खड़ी हुई, सोने की मूठ की छड़ी गिर पड़ी। मूठ चमेली के पैर पर लगी, और वह 'आह' कर उठी।

नन्दू छड़ी उठाकर बाहर चला। चमेली ने आँखों में शराब भरकर पूछा—'कहाँ चले !'

'इसे फेंकने।'

'क्यों ?'

'इसने तुम्हें कष्ट जो दिया।'

चमेली ने अट्टहास करके कहा—'फेंको मत—रख दो; मैं उसे मना लूँगी।'

'तो इसे भी तुम्हें दिया।' कहकर नन्दू ने छड़ी मेज पर रख दी।

चमेली ने दोनों बाहु फैलाकर नन्दू की छाती में सिर छिपा लिया।

नन्दू ने जीभ की नोक से चमेली का कपोल-स्पर्श किया, और कहा—'एक बात बताओगी ?'

चमेली ने तकिये में मुँह छिपाकर कहा—'क्या ?'

'सच बताओगी ?'

'क्या ?'

'झूठ मत बोलना।'

'नहीं।'

नन्दू ने कान पर ओठ धरकर कोई बात कह दी।

चमेली लाज से सिमट गई। बन्धन शिथिल हो गया।

'बोलो !'

'क्या बोलूँ ?

'फिर कहूँ ?'

'कहो।'

तब नन्दू ने एक-एक अक्षर पर जोर देकर कहा—कि···त···ना ···र···स···मि···ला···?'

बन्धन और शिथिल हो गया। जवाब अब भी कुछ न मिला।

नन्दू ने कहा—'बोलो ! जवाब क्यों नहीं देतीं !'

पर जवाब में एक लम्बी साँस की आवाज सुनाई दी।

नन्दू पलंग पर उठकर बैठ गया। चमेली का चेहरा अब भी तकिए में छिपा था। नन्दू ने उसे पलट दिया। देखा—चमेली की आँखें आँसुओं से भरी हैं।

'क्यों ?'

चमेली आँसू पोंछकर हँस पड़ी, और बोली—'क्या पूछा ?'

नन्दू ने फिर अपना प्रश्न दोहरा दिया।

चमेली उदास हो गई, कहने लगी—'क्या बताऊँ ?'

'कुछ तो !'

'अरे बाबू साहब, हमारा क्या रस···?'

नन्दू ने चौंककर कहा—'क्या मतलब ?'

चमेली के चुम्बन-सिक्त ओठों पर शुष्क ँसी दौड़ गई। बोली—'रखैल—और रस ?'

नन्दू की साँस रुक गई, और वह धीरे-धीरे पलंग से उठ पड़ा।

घण्टे-भर बाद ही एक ट्रेन जाने वाली थी। टाइम से दस मिनट पहले

नन्दू भीतर आया, और कोट पहनकर कहने लगा—'मैं जाता हूँ।'

'कहाँ?'

'कहीं भी।'

'और मैं?'

'यहीं रहो।'

'और सामान?'

'छोड़े जा रहा हूँ।'

'किसके लिए?'

'तुम्हें दिया।'

'सच?—और यह घड़ी?'

'तुम्हारी हो चुकी।'

'क्या सच?—और यह अँगूठी—यह छड़ी—यह लोटा-गिलास?'

'सब तुम्हारा हो गया।'

स्टेशन होटल के पास ही था, इसलिए गाड़ की सीटी चमेली के कानों तक पहुँच सकती थी।

सुधार की खोज

१

सुधाकर ने एम० ए० पास किया है और एक नया खब्त उस पर सवार हो गया है।

अपनी माँ का एकलौता बेटा है, खूब दौलत है और बड़े लाड़ों से पला है। भावुक है, गम्भीर है, और कहें तो कह सकते हैं कि—बिगड़ने के बजाय सुधर गया है।

पास होते ही ब्याह की बात उठी, लड़की भी स्थिर हो गई। पर, देख आने को कहा गया, तो पत्थर की मूर्ति की तरह अचल खड़ा रह गया, और कुछ न बोलकर चुपचाप बाहर चल दिया।

पिता का देहान्त हो चुका है। रिश्ते के एक ताऊ उसके अभिभावक हैं। वे ताऊ न होकर उसके मित्र-से हैं, और सुधाकर अपनी सब बातें निश्शंक उन्हें बता देता है।

जब माँ के लड़की पसन्द कर आने के प्रस्ताव पर अनेक बार चुप्पी साधी, तब माँ ने उन्हीं ताऊजी की शरण ली। ताऊजी ने शाम को छेड़ दिया वही जिक्र। बोले—'लड़की तो अच्छी है सुधाकर, जाकर एक बार देख आओ न।'

ताऊजी ने कहा—'क्यों ?'

सुधाकर ने नेत्र झुकाकर साफ शब्दों में कहा—'साहब, मैं तो कोई क्रान्तिकारी विवाह करूँगा।'

'क्रान्तिकारी विवाह ?' ताऊजी मुँह फैलाकर रह गए।

अब सुधाकर कुछ आवेश में आकर बोला—'देखिए, आज हमारा समाज कैसा पतित हो रहा है। असंख्य होनहार लड़कियाँ गरीबी के कारण कुपात्रों को सौंप दी जाती हैं। और फिर उनकी दुर्दशा का ठिकाना नही रहता। किसी का पति शराबी है, किसी का गँजेड़ी, किसी का बुड्ढा!'

ताऊजी ने कहा—'बड़े शुभ विचार हैं। तो क्या किसी गरीब की लड़की की तलाश की जाय?'

'न!'

'फिर?'

हाँ तो, देखिए न, ऐसी लड़कियाँ इन नीच, पापिष्ठ पतियों के चंगुल में जीते-जी नरक-यातना का अनुभव करती है, और पड़ोसी गुण्डों और नीच युवकों-द्वारा बहकाई जाकर अन्त में पतन और दुराचार के गहरे गड्ढे में गिरती हैं। अन्त में अधिकांश ऊबकर वेश्या हो जाती हैं।'

ताऊजी ने मुस्कराकर कहा—'खूब! 'सेवा-सदन' पढ़ा है क्या?'

सुधाकर ने सिर झुकाकर स्वीकार किया—'जी हाँ, पढ़ा तो है। पढ़ा क्या है, मनन किया है, और क्रियात्मक...'

'अब ताऊजी ने एक-बारगी उछलकर कहा—'अरे, क्या वेश्या...'

सुधाकर ने खिसियाकर कहा—'जी हाँ, चौंक क्यों पड़े? मैं तो ऐसा ही क्रान्तिकारी विवाह करना चाहता हूँ।'

'सच? देखो, धोखा खाओगे।'

'क्यों? धोखा क्यों? मैं विश्वासपूर्वक कहता हूँ कि हर-एक वेश्या विवाह करके 'एक' की होकर रहने को उत्सुक है।'

'पर देखो ना! 'सेवा-सदन' की-सी तो सब जगह नहीं मिल सकती।'

'जी हाँ, वैसी न मिलने पर भी काम चल जाएगा।'

'हूँ, कहकर ताऊजी विचार में पड़ गये।

सुधाकर ने आप-ही-आप कह दिया—'और यदि ऐसा सम्भव न हुआ तो मैं ब्याह ही न करूँगा।'

ताऊजी बड़बड़ा उठे—'परिस्थिति! समाज!!'

सुधाकर बोला—'समाज की मैं परवा नहीं करता। मेरा अन्त:करण

शुद्ध है। मुझे किसी की चिन्ता नहीं है।'

कहते-कहते आवेश आर उत्साह से उसका कण्ठ कुछ गद्‌गद् हो गया।

कई मिनट तक दोनों चुप बैठे रहे, फिर सहसा ताऊजी बोल उठे—'तो तुम वेश्या से विवाह करोगे?'

सुधाकर ने कुछ सहमकर कहा—'जी हाँ, किसी समाज-तिरस्कृता से।'

'जो विवाह की इच्छुक हो।'

'जी हाँ; जो परिस्थितियों से मजबूर होकर वेश्या बन गई हो, और जो सच्चे हृदय से गृहस्थी बनने को उत्सुक हो।

ताऊजी ने स्थिर नेत्रों से उसे ताकते हुए कहा—'तो करोगे ही?'

'जी हाँ, करूँगा—आर भारत के युवकों के लिए एक नया रास्ता खोल दूँगा।'

ताऊजी फिर विचार में डूब गए। कई मिनटों के बाद सहसा उनके ओठों पर हँसी की लहर दौड़ गई। बोले—'तो जनाब का 'कोर्ट-शिप' कैसे होगा?'

सुधाकर का मुँह लाल हो गया। बोला—'आप मेरा परिहास करते हैं।'

ताऊजी ने कहा—'न भाई। क्यों बुड्ढे आदमी पर नाराज होते हो? मैं पूछता हूँ, आखिर मन-माफिक पात्री की खोज कैसे लगाओगे?'

क्या यह भी परिहास है, यह देखने को सुधाकर क्षण-भर को रुका, फिर बोला—'मैं दस-बीस वेश्याओं की पूर्व-कथायें सुनूंगा, और उनमें से एक को चुन लूंगा।'

जब सुधाकर चला गया तब ताऊजी दौड़े-दौड़े माँ के पास पहुँचे और बोले—'लड़की हाथ से न जाने पाये। ब्याह जल्दी ही होगा।'

२

आज सुधाकर की पहली मुहिम है। आज रात को नौ बजे के बाद वह बाजार की तरफ जायेगा।

ज्यों-ज्यों समय बीता, उसके शान्त हृदय-तल में हिलोरें-सी उठने लगीं। दिन-भर शहर में घूमता रहा। कभी इस मित्र के यहाँ गया, कभी उस सम्बन्धी के। पर ठहरा कहीं पाँच मिनट से ज्यादा नहीं। मुँह उसका विकृत हो रहा था और चेष्टा विकार-युक्त। बातें भी उखड़ी-पुखड़ी-सी थीं। जिससे मिला, उसी ने आज इस परिवर्तन पर लक्ष्य किया।

ठीक तीन बजे घर आ पहुँचा। सीधा अपने कमरे में घुस गया, और भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया। तब चारपाई पर दो-जानू बैठकर वह हाथ जोड़कर ईश्वर से प्रार्थना करने लगा। ठीक शब्द तो हमें याद नहीं, हाँ, इतना बता सकते हैं कि वह साहस का सञ्चय कर रहा था। तब उसने जोर-जोर से धड़कते हुए दिल को हाथ से दबाया।

चार बजे, और फिर पाँच। भोजन का बुलावा आया, तब बिना दूसरे की नौबत आए सुधाकर खाने पहुँच गया, और झटपट निबटकर फिर कमरे में आ बैठा। दिल धड़कना बन्द हुआ, तब उसने पोशाकें पसन्द करनी शुरू कीं। सादी-से-सादी, स्वच्छ-से-स्वच्छ होनी चाहिए।

आखिर को एक खद्दर का जोड़ा पसन्द आया। गाँधी-कैप, नीची अचकन और चूड़ीदार पायजामा। गले में खद्दर की एक हल्की चादर डाल ली।

अब घर में बैठना दूभर हो गया। कमरा बन्द कर, चोरों की तरह बाहर निकल गया।

रात के नौ का घण्टा सुनाई देने तक, और माली के दरवाजा बन्द कर देने की सूचना देने तक सुधाकर शहर से बाहर एक बाग में बैठा रहा, और तब निकलकर धीरे-धीरे बाजार की तरफ चला।

दिल का धड़कना फिर शुरू हो गया था।

किसी तरह खाँस-खूँसकर, दाब-दूबकर सुधाकर ने दिल की धड़कन कम की, और गम्भीर मुँह बनाकर बाजार में इधर-उधर घूमने लगा।

एक पर नजर जमी। खासी सुन्दर—चिकना, गेहुँआ रंग, नक्श अच्छे, उम्र कोई सत्रह साल और चेहरे पर भोलापन बरसता था। सुधाकर ने सोचा—यह जरूर कोई समाज-तिरस्कृता दुखिया है। आज इसी के पास चलेंगे।

मन शुद्ध था, उद्देश्य पवित्र था, वेश आदरणीय था, फिर भी न-जाने क्यों सुधाकर का दिल काँप रहा था ? क्यों संकोच ने पल्ला पकड़ा था ?

पर आँख मींचकर वह जीने पर चढ़ ही तो गया !

३

एक दिन ताऊजी ने सुधाकर को बुलाया और पूछा—'कहो भाई, 'सेवा-सदन' को क्रियात्मक…'

सुधाकर ने लजाकर सिर झुका लिया, और कहा—'आप तो ताऊजी व्यंग्य करते हैं। आप जानते हैं कि मैंने सद्‌भावना से प्रेरित होकर ही ऐसा निश्चय किया है। आपको मुझे प्रोत्साहन…'

परिस्थिति समझकर ताऊजी हठात् गम्भीर हो गये और बोले—'न सुधाकर, ऐसा न समझो। मैं विनोद प्रिय व्यक्ति हूँ, इसी कारण इस प्रकार कहा। बुरा न मानना। सचमुच तुम्हारा यह निश्चय धन्य है! पर भाई, तुमने बिना सोचे-समझे एक बहुत दुरूह काम का बीड़ा उठा लिया है। अगर तुम अपने इरादे में कामयाब हो जाओ तो मुझसे बढ़कर आनन्दित कोई न होगा।'

सुधाकर ने प्रसन्न होकर सिर झुका लिया।

ताऊजी ने कहा—'हाँ, कहो तो। गए थे किसी के पास ?'

सुधाकर ने सिर ऊपर न उठाकर कहा—'जी हाँ। तीन-चार जगह जा चुका हूँ।'

ताऊजी ने उत्सुक बनकर पूछा—'क्या हुआ ?'

'एक ने तो कहा, मेरी माँ वेश्या थी, मैं भी वही पेशा करती हूँ। ब्याह की बात सुनकर चुप हो गई। मैं चला आया।'

'और ?'

'एक शायद ब्याह करने को राजी हो भी जाती, पर उसकी माँ ने बीच में पड़कर गड़बड़ कर दिया, बल्कि उसने मुझे कुछ सख्त-सुस्त भी कह डाला। कहने लगी दस हजार तो मुझे दो और इसे पांच सौ रुपया महीना हाथ-खर्च को देना होगा। आदि-आदि।'

'अच्छा। और ?'

'एक ने मेरी बड़ी अभ्यर्थना का, वड़े उत्साह से बातचीत की, पर ब्याह की बात उठी तब खिलखिलाकर हँस पड़ी और बोली—'अरे बाबू साहब, दिमाग खराब हो गया है क्या ?' हारकर वहाँ से भी लौटना पड़ा ।'

'बस ?'

'जी नहीं, एक के यहाँ और गया था ।'

'फिर ?'

'जी, क्या बताऊँ ! वह तो मुझसे लड़ने और बहस करने को तैयार हो गई । कहने लगी—'आप लोग क्यों हमसे जलते हैं ? क्यों हमारी मिट्टी खराब करते हैं ?' इत्यादि-इत्यादि ।'

'बस ?'

'बस ।'

'अब कहो, मेरी बात सच हुई न !'

सुधाकर ने जल्दी से कहा—'तो अभी प्रयत्न ही कितना हुआ है ?'

ताऊजी ने मन-ही-मन कहा, 'पागल लड़का !' फिर मुँह से बोले—'तो अभी और प्रयत्न करना बाकी है ?'

फिर परिहास का आभास पाकर सुधाकर खीझ उठा, और बोला—'जी हाँ, है तो; कहिए ?'

ताऊजी ने सँभलकर कहा—'न भाई, नाराज न होओ, मैं पूछता हूँ, अब क्या विचार है, किसके पास जाओगे ?'

'आज एक के पास और ।'

'फिर ?'

'फिर ? फिर देखा जायगा ।'

'हूँ ! आज माँ से कुछ कहा-सुनी हो गई थी न ?'

'जी हाँ ।'

'क्यों ?'

'जी, वही पुरानी बात ! 'लड़की को देख आ, लड़की को देख आ;' दिमाग परेशान कर डाला !'

'तो लड़की को देख क्यों नहीं आते ?'

'जी ? उससे क्या लाभ ? मुझे तो उससे ब्याह करना नहीं है।'

'फिर भी देख तो आओ, उनके भी मन की हो जाय। आकर कह देना; पसन्द नहीं आई।'

'जिस गाँव जाना नहीं है, उसके कोस गिनने से लाभ ?'

'कोस गिनने से लाभ होगा भाई। इस बुड्डे की इतनी बात मान जाओ।'

यह कहते-कहते ताऊजी ने गिड़गिड़ाकर उसकी ठोड़ी पर हाथ लगा दिया।

'अरे! जी, अच्छा कल; आज और हो आऊँ।'

'अच्छा, किसके यहाँ जाओगे ?'

सुधाकर ने वेश्या का नाम-पता बता दिया। उसके सम्बन्ध में बहुत-कुछ सुना था। आज उसकी परीक्षा करेगा।

सुधाकर चला गया, तब ताऊजी भागे-भागे पुराने दोस्त बुड्ढे करीमखाँ के पास पहुँचे और घण्टा-भर तक गुप-चुप उससे परामर्श करते रहे। न मालूम क्या बातें हुईं, पर जब ताऊजी उठने लगे तब 'खर्च-बर्च के लिए' पचास रुपये के नोट करीमखाँ के 'न, न!' करने पर भी उन्होंने दे दिए थे।

४

नौ बज चुके थे और सुन्दरबाई के कोठे पर बाईजी थीं, और एक मुसलमान था। मुसलमान के तन पर अतलस की अचकन थी, चूड़ीदार पायजामा और गुलाबी मोजे थे। सिर पर खुशनुमा सर्दई रंग का रेशमी साफा बँधा हुआ था।

आँखों में सुरमा, बालों में खुशबूदार तेल, मुँह में पान, और मोंछें मोम लगाकर कानों पर गोल मोड़ी गई थीं।

पहचानिए, ताऊजी का दोस्त निराली सज-धज में मौजूद था।

बहुत देर से बातें हो रही थीं। दोनों एक निश्चय पर पहुँच चुके थे। दोनों की नजर रह-रहकर बाजार की तरफ जा बढ़ती थी।

हठात् करीमखां चौंक पड़ा, और सामने पटरी पर घूमते हुए एक

युवक की तरफ संकेत किया। बोला—'लो, अब आने ही वाले हैं। मुझे तो किसी और जगह बैठा दो।'

'क्यों ?'

'वाह ! मेरे तो मालिक ठहरे ! मुझे पहचान न लेंगे ?'

'ठीक है, यह कोठरी।'

करीमखाँ ने कहा—'ठीक है। देखो, बड़ा गहरा माल है। जिस तरह समझाया है, ठीक उसी तरह।'

सुन्दर ने मुस्कुराकर कहा—'अच्छा ! अब रटा रहे हो।'

करीमखाँ भी बदले में कत्था-सने दाँत निकालकर कोठरी में घुस गया।

पाँच-सात मिनट में बीतते-न-बीतते सुधाकर ऊपर आ पहुँचा।

सुन्दर हँसकर खड़ी हो गई और साड़ी का पल्ला सरकाते हुए हाथ जोड़कर बोली—'आइए, नमस्ते !'

सुधाकर झिझककर एक बार पीछे हट गया। वाह ! बिलकुल नया सम्बोधन !

पाँच-छः बार जाने से सुधाकर की हिचक बहुत-कुछ दूर हो गई थी। सीधे जाकर गद्दी पर बैठ गया और नेत्र झुकाकर बोला—'बैठो देवि !'

सुन्दर ने चौंकने का प्रदर्शन करते हुए कहा—'जी ? क्या कहा ?'

सुधाकर मुस्कराकर बोला—'बैठो देवि, बैठो !'

चकित, स्तम्भित सुन्दरबाई धीरे-धीरे बैठ गई, और प्रत्येक भाव-भङ्गी से शुद्ध पवित्रता प्रकट करती हुई बोली—'आप कौन हैं महोदय ? कैसे पधारने की कृपा की ?

सुधाकर ने कहा—'मैं एक अनोखा प्रस्ताव लेकर तुम्हें कष्ट देने आया हूँ।'

'जी, आज्ञा कीजिए।'

'देवि, मैं यह जानना चाहता हूँ कि क्या तुम सदा से वेश्या ही हो ?'

सुन्दर का मुँह अकस्मात् सफेद हो गया, और मुँह से एक लम्बी और ठण्डी साँस निकल गई।

सुधाकर ने उत्साहित होकर कहा—'क्यों, क्या मेरी बात से कुछ

कष्ट हुआ ? मेरा अभिप्राय ...'

सहसा सुन्दर ने रोनी होकर कहा—'महोदय, अब क्या कष्ट होना बाकी रह गया है ? ओफ् परमात्मा !'

सुधाकर ने कहा—'अधीर न हो ! बताओ तो। अपनी पूर्व-कथा मुझे सुनाओ।'

सुन्दर ने हद कर दी ! आँखों से आँसू निकलने लगे, और मुँह से रह-रहकर ठण्डी साँसें !

वाह ! यह तो सुधाकर के मन की बात होती जा रही है ! क्या आखिर परिश्रम सफल होगा ?

बोला—'तो सुनाओ भी ?'

तब सुन्दर ने रोते, कलपते, आँसू पोंछते, आहें भरते-अपनी राम-कहानी सुनाई।

ब्राह्मण की लड़की है। बचपन में बाप मर गया विधवा माता रह गई, उसने रुपए की तङ्गी और रिश्तेदारों के दबाव से मजबूर होकर उसे कुपात्र को ब्याह दिया।

जिससे ब्याह हुआ, उसकी उम्र चालीस साल की थी। तीसरा ब्याह था। अफीम, चरस और शराब के व्यसन ने उसे जिन्दा-दर-गोर कर रक्खा था, और प्रकृति उसकी राक्षस की तरह कठोर बन गई थी। जो कुछ कमाता, बदमाशी में उड़ा देता। वह तीन-तीन दिन तक भूखी-प्यासी तड़फती रहती।

सुधाकर साँस रोककर आगे झुककर ध्यान से सुन रहा था। वाह ईश्वर ! आखिर 'जिन ढूँढ़ा, तिन पाइयाँ।'

एक दिन दिन-पीछे कुछ मुसलमान-गुण्डे घर में आ घुसे और उसे पकड़ कर ले चले। उसके मुँह में कपड़ा ठूँस दिया गया। रास्ते में किसी तरह कपड़ा निकालकर वह चिल्लाई। शहर का कोतवाल वहीं घूम रहा था। उसने बदमाशों को मार भगाया और उसे अपने साथ कोतवाली ले गया। वहाँ रात को उससे अनुचित प्रस्ताव किया गया। उसने कौशल से काम लिया और झाँसा-पट्टी देकर दो-तीन दिन बची रही। फिर एक दिन सिपाही की मदद से भाग निकली। उस सिपाही के फन्दे से छूटकर एक

बड़े-भारी नेता के घर में रसोई बनाने पर नौकर हो गई। उनकी नीयत खराब देखकर वहाँ से भी भागना पड़ा, और अन्त में विवश होकर वेश्या बन गई। अब केवल गा-बजाकर पैसा कमाती है।

सुधाकर द्रवित होकर रोने लगा। फिर आँसू पोंछकर गद्-गद् कण्ठ से बोला—'तुम्हें इस व्यवसाय से घृणा नहीं होती?'

सुन्दर ने सिसकते हुए कहा—'हाँ! मैं ही जानती हूँ। मेरे मन में भयानक कष्ट की ज्वाला धधक रही है। हाय! मैं कहीं की न रही!! न-जाने मुझे क्या दण्ड मिलेगा!'

सुधाकर ने कहा—'तुम्हें अपने स्वामी की खबर मिली है?'

सुन्दर ने झिझककर कहा- 'वह मर गया—मुझे पता लग चुका है—एक दिन शराब खाने में।'

तब सुधाकर ने क्रमशः ब्याह का प्रस्ताव किया।

कुछ शर्तें हुईं, कुछ वादे हुए, कुछ बातें हुईं, और प्रस्ताव स्वीकार हो गया।

सुधाकर उठा, तब सौ रुपए का नोट सुन्दर की हथेली पर रख दिया, और कहा—'अब किसी को न आने देना। तब तक इससे खर्च चलाओ।'

'यह क्या? यह क्यों? दस-बीस दिन गुजारा तो···।'

'न, न, रक्खो!'

नोट रख लिया गया, और सुधाकर चल पड़ा।

करीमखाँ का कड़ा निषेध था कि खड़ी होकर बिदा न करे, बैठी रहे। बिना इस निषेध का रहस्य समझे ही सुन्दर को रह जाना पड़ा था। वह न उठी, और बैठे-बैठे ही सुधाकर को विदा किया।

५

जीने की दूसरी सीढ़ी पर पैर रक्खा ही था कि भीतर कोई जोर से बोल उठा—'वाह बी सुन्दर! कमाल किया।'

सुन्दर ने जल्दी से कहा—'अरे चुप! चुप! सुन लेगा।'

सुधाकर ठिठक गया।

फिर आवाज आई —'वाह वा' वाह! क्या काठ का उल्लू फाँसा है। ठीक किया, 'शाबाश!'

सुन्दर बराबर 'चुप-चुप' कर रही थी।

वह आवाज बिना रुके सुनाई दे रही थी—'बड़ी मोटी चिड़िया है सुन्दर, लाखों के वारे-न्यारे हैं? क्या दे गया? अच्छा! सौ रुपए? ला, पचास चुपके से इधर दे दे।'

इस बार सुन्दर ने उत्तेजित होकर कहा—'चुप रहो! चुप रहो! लो, पचास नहीं सौ लो, मगर चुप रहो।'

सुधाकर ने झाँककर देखा कि एक मुसलमान ने सौ रुपए का नोट अचकन की जेब में रख लिया।

आँखों आगे अँधेरा छा गया। किसी तरह गिरता-पड़ता सुधाकर नीचे पहुँचा।

माँ ने जो लड़की पसन्द की थी, उससे सुधाकर का ब्याह हो गया…। ताऊजी ने सो रुपए का एक सुरक्षित नोट बहू को मुँह दिखाई में दिया!

निग्रह

१

रामदेव ने इक्कीसवें वर्ष में पैर रक्खा है, और बी० ए० पास किया है।

और माँ के, बुआ के, दादी के धैर्य का बाँध भी जैसे एक बारगी टूट पड़ा है। बाबूजी भी अब कुछ सतर्क हो पड़े हैं! यहाँ तक कि रेलवे के वयोवृद्ध रिटायर्ड क्लर्क, पड़ोसी, लाला रङ्गीलाल भी, जो सदा रामदेव को अविवाहित रहने की प्रेरणा दिया करते थे, अब प्रतिकूल परामर्श देने के लिए अवसर ढूढ़ने लगे हैं; पर इस रामदेव पर कैसा भूत सवार हुआ कि ब्याह की बात सुनकर ही जल उठता है और बड़ों पर आँखें काढ़कर, छोटों पर डाँटकर, बीच वालों पर तर्क ठानकर, ब्याह के प्रति अपनी भयानक उपेक्षा प्रकट करता है!

और माँ, बुआ, दादी किसी सुन्दरी, गोरी सुकुमारी का जिक्र चलाती हैं, तो थाली छोड़कर खड़ा हो जाता है।

बाबूजी समझदार हैं, वह उससे कम बातें करते हैं, इसी से वह भी उनका मान करता है। और ब्याह के सम्बन्ध में अनर्गल बात चलाकर वे भी उस सुरक्षित और बचे हुए मान की तलछट को नष्ट करना नहीं चाहते हैं।

रामदेव अब रङ्गीलाल के पास फटकता नहीं। उनसे वह डरता भी है, और उनकी बात मानने से सहसा इन्कार कर देना भी उसे मंजूर नहीं है।

बाबूजी ने हठात् एक दिन रंगीलाल से जिक्र छेड़ दिया, और दोनों बुड्ढ़ों ने मिलकर एक उपाय स्थिर कर डाला।

२

खाना खाकर उस जिन रंगीलाल बाजार न गए और रामदेव दिखाई दिया, तो अपने स्वभाव के विरुद्ध आवाज देकर उसे अपने पास बुला लिया।

अब इतनी अवहेलना तो अशिष्टता, विवशता और अहंकार तक पहुँच जाती है। रामदेव आया।

'कहो भाई, एम० ए० में दाखिल होगे ?' रंगीलाल ने हुक्के की नाल होठों पर रखकर हँसते हुए कहा।

रंगीलाल ने उस सम्बन्ध में बात न चलाई, तो अब उसे चलानी चाहिए। बोला—'जी हाँ, मेरा तो इरादा है।'

'तुम्हारा इरादा है, तो बाधा क्या···?'

'पिता जी···'

'हाँ···।'

'माताजी···'

'हाँ···।'

'और सब लोग···'

'हाँ, क्या है ?'

'यही सब लोग तंग करते हैं—ब्याह कर लो, ब्याह कर लो। मेरे विचार तो आप जानते हैं !'

'क्या अब तक उन विचारों पर दृढ़ हो ?'

'जी हाँ !'—अब रामदेव की आँखें उत्साह से चमक उठीं—'मुझे भी क्या आपने ऐसे-वैसों में समझ लिया है ? मैं विवाह करके कदापि बन्धन में न पड़ूँगा, कदापि देश-सेवा के पथ में काँटे न बिछाऊँगा, कदापि गुलाम संतान पैदाकर, पृथ्वी का बोझा न बढ़ाऊँगा !'

लाला रंगीलाल ने कहा—'शाबाश ! शाबाश ! आज तुमने मेरी तबियत खुश की है ! वाकई तुम्हारे जैसे युवक ही दुनियाँ में कुछ कर सकते हैं।'

रामदेव यहाँ से चला, तो आनन्द और गर्व से उछला पड़ता था।

३

वह लाला···की लड़की सबको पसन्द आई है। नवीं तक पढ़ी है, परी-सी सुन्दर है, मक्खन-सी कोमल है, और लक्ष्मी-सी सुशील है और फिर सब के बाद लड़की के माँ-बाप कैसे शरीफ हैं! बेचारे सिर पटक रहे हैं! एक ही लड़की है—चाहे सर्वस्व ले लो। लड़के पर लट्टू हैं। वह चाहे लड़की देख ले, बात कर ले, जाँच ले, समझ ले, ठोंक ले, बजा ले। माँ, दादी, बुआ, बाबूजी—सब लड़की को देख चुके हैं और पसन्द कर चुके हैं।

अब, सब, दम-साधे रामदेव का खब्त उतरने की बाट देख रहे हैं और उतारने के उपाय भी चुपके-चुपके सोच रहे हैं! इस लड़की का जिक्र बेटे के आगे चलाने का बीड़ा माँ, बुआ, दादी कोई न उठा सकी।

इन्हीं दिनों दो बुड्ढों का परामर्श एक निश्चय पर पहुँचा था।

उस निश्चय के षड्यंत्र को सफल बनाने की तैयारियाँ सरगर्मी से होने लगी हैं।

४

वह दूर के रिश्ते में कोई मौसी-औसी लगती हैं। वह आज एक सप्ताह से आई हुई हैं। बेचारी गरीब हैं! साथ में सामान-वामान कुछ नहीं था। दो-एक दिन पहले से चर्चा चली थी, और फिर वे एक दिन गाड़ी में बैठी खुद ही आ-मौजूद हुईं। कपड़ों की एक पोटली और एक पन्द्रह-सोलह साल की लड़की उनके साथ थी।

पहले तो कभी इस मौसी को रामदेव ने देखा नहीं है, न उसके विषय में कुछ सुना ही है। होगी कोई! अभी तक उसे घरू-मामलों में कुछ जानने-पूछने का मौका ही कहाँ मिला है! अब तक तो वह किताबें, टेनिस, क्लब और सिनेमा को लेकर ही पागल बना रहा है।

पर यह लड़की···

यह लड़की तो उसे कुछ परिचित-सी, कुछ प्रिय-सी लगती है, कुछ

आकर्षण करती है और इस लड़की को देखकर तो वह कुछ लजाता भी है।

पर लजाए, तो कमजोरी जाहिर होती है और बात करे, तो सिद्धांत टूटने का डर ! या यह भी नहीं, तो हास्यास्पद बनने की आशंका !

यह सब सोचकर उसने अपना सारा समय बाहर-बाहर बिताना आरम्भ कर दिया है।

अब, मित्रों के पास जी नहीं लगता, टेनिस खेलना रुचता नहीं; किताबें, क्लब और कॉलिज खत्म ही हुए, सिनेमा रात की चीज है; इस-लिए पार्क में, कुञ्ज में, दरिया-किनारे या ऐतिहासिक खंडहरों में दिन-दिन-भर बिता देता है।

सिद्धांत-भंग के भय ने बेचारे को अकस्मात् कितना भावुक बना दिया है !

५

आज फिर रंगीलाल ने बुला ही लिया। जब पूछा, कहाँ रहते हो ? घर से क्यों इतना वैराग्य हो गया ? तो एकदम आत्मसमर्पण के भाव से सिर झुकाकर बोल उठा—'साहब, आज एक बात साफ-साफ आपसे कहता हूँ। बुरा न मानियेगा और मुझ पापिष्ठ को लज्जित भी न कीजिएगा।

जब रंगीलाल ने स्वीकार किया, तो बोला—'मैं 'ब्याह' की समस्या पर इन दिनों गंभीरतापूर्वक विचार करता हूँ…'

फिर ठहरकर…'और देखिए…चाहे आप मुझे मन-ही-मन भयानक पापी कहें—मैं इस परिणाम पर पहुँचा, कि मुझे विवाह कर लेना चाहिए।…अब आप चाहें तो मुझे गालियाँ दे लें।'

'वाह ! इसमें गालियों की क्या बात ! यह तो स्वाभाविक बात है। आखिर बीस-बाईस वर्ष के हुए, माँ-बाप की अकेली संतान !—यह याद क्यों न करो ? वाह भई, वाह ! ब्याह तो करना ही होगा।'

इस गिरगिट की तरह रंग बदलने को हम तो देख सकते हैं, रामदेव को देखने की इच्छा, आशा या फुरसत कहाँ ? जल्दी से बोला—'जी हाँ,

मैंने सोचा सबसे पहले तो सारे कुटुम्बी-जनों का दिल दुखाना ठीकनहीं, फिर सारा संसार मेरी जान बबाल में डाले हुए है—ब्याह करो! ब्याह करो! एक आपकी बात छोड़ दी जाय…'

रंगीलाल ने कहा, 'और ज्यों-ज्यों उम्र बढ़ेगी, यह वबाल बढ़ेगा ही।'

'जी हाँ, बढ़ेगा ही।' रामदेव ने कहा—'रहा सवाल देश-सेवा का; सो असल में तो संतान इसमें बाधक होती है; पत्नी नहीं। पत्नी तो बाधक क्या—पति चाहे तो सहायक बन सकती है। ठीक है न? और संतान तो अपने हाथ की बात है! संयम तो पुरुष का पहला गुण होना चाहिए! और मेरा तो पच्चीस वर्ष तक का प्रण है। चार वर्ष तो…'

रंगीलाल ने मुँह फेरकर चिलम फूंकते हुए कहा—'सब ठीक है, तुम ब्याह करो जी, मिठाई खाये बहुत दिन हो गए!'

फिर बात न जमी, और रामदेव जब बाहर आया तो पाँच मिनट तक दीवार से कान लगाये खड़ा रहा। रंगीलाल हँस तो नहीं रहे हैं!!

बुआ ने—जिसका व्यवहार भाभी का-सा है—हँसकर बता दिया है कि मौसी के साथ आई हुई लड़की उसकी स्त्री बननी संभव हो सकती है।

अगले दिन कई महत्वपूर्ण घटनाएँ हो गईं। मौसी और लड़की चली गईं, पिता ने साफ-साफ, खुलकर, कुछ बातें कीं और रामदेव ने सिर झुकाकर आत्म-समर्पण कर दिया!

६

ब्याह हो गया है और संयम और प्रतिज्ञा की धज्जियाँ भी उड़ गई हैं। हाँ, सिद्धान्त-रक्षा की धुन, या जली रस्सी की ऐंठन अभी बाकी है। सन्तान-उत्पत्ति के विरुद्ध अभी है; पर अन्तर इतना है कि पहले जीवन भर निस्सन्तान रहना अभीष्ट था, अब चार-पाँच वर्ष की परिधि…

सन्तान-निग्रह का महत्त्व खुद खूब समझ लिया है और नई पत्नी को गम्भीरतापूर्वक समझाया जा रहा है। 'मेरी स्टोप्स' की सब पुस्तकें पढ़ चुका है और समझ चुका है; 'मौल्थीजियनथ्यूरी' का तीव्र भक्त बन गया है और 'सन्तान-निग्रह' या 'बर्थकण्ट्रोल' के समस्त उचितानुचित उपायों का उपयोग करना शुरू कर दिया है।

साथियों में खूब डींग हांकी जाती है, ब्रह्मचर्य, संयम और सन्तान-

निग्रह पर संक्षिप्त और अधिकारहीन उपदेश दिए जाते हैं और क्षीणकाय, दुर्बल और दब्बू विवाहित साथियों की खिल्ली भी उड़ाई जाती है।

पर, जो गुणी हैं, अनुभवी हैं, समझदार हैं, वे उस उतरे हुए मद को देखते हैं और हँसते हैं।

लाला रंगीलाल भी देखते हैं; पर हँसते नहीं।

पर, अरे! यह क्या हो गया! महीना बीत गया, एक सप्ताह, दो सप्ताह; धीरे-धीरे तीसरा भी बीतने लगा! रामदेव महीने का ठीक-ठीक हिसाब रखता है, यह क्या हो गया! सारे उपचार, सारी सतर्कता, सारी एहतियात व्यर्थ सिद्ध हुई! छः महीने भी नहीं हुए।

व्याकुल हो गया। स्टोप्स की पुस्तकें छान डाली, डॉक्टरी, वैद्यक के कई ग्रन्थ उलट-पलट दिए और नुस्खे छाँट लिए।

तब, एक दिन, जबर्दस्ती दवा पिला दी।

७

पांच वर्ष बीत चुके हैं। देश-सेवा तो कुछ हुई-हवाई नहीं, पड़ गए बिजिनेस के, या रोटी के, या पेट के चक्कर में! हाँ, इतना जरूर हुआ कि सन्तान अभी तक हुई नहीं है। वाह! कैसा लाजवाब नुस्खा था! एक ही खुराक में झगड़ा साफ!

पर, रामदेव यह नहीं कहता; वह तो उस खुराक को कोसता है, उन किताबों को जला देने की इच्छा करता है और मेरी स्टोप्स और मौलथ्युजि साहब के बाल पकड़कर गोली मार देने का संकल्प करता है और न-जाने क्या-क्या करता है!

किसी ने कह दिया है कि बाईस-तेईस वर्ष तक स्त्री को बच्चा न हो, तो फिर होना असम्भव है! बस, अब जी-जान से जुटा है। बस एक! एक लड़का हो जाय, या ज्यादा-से-ज्यादा एक लड़की! और इससे अधिक की जरूरत नहीं! यह भी न हुआ, तो बात क्या रही! ब्याह किया है, तो सन्तान के लिए। हाँ, अन्धाधुन्धी बुरी है!

पर इन तर्कों का तो अब समय नहीं। अब तो वर्ष के भीतर-भीतर किसी तरह बाप बनना है। चाहे जैसे हो, चाहे जितना रुपया खर्च हो जाय

चाहे जितना परिश्रम करना पड़े।

और देश-सेवा ? ठहरो जी, वह इस समय कहने की बात नहीं है। अब तो दो साल के भीतर-भीतर जल्दी-से-जल्दी बाप बनना है और वंश को निर्मूल होने से बचाना है।

दाई, मेम, डॉक्टर, वैद्य, हकीमों की चिकित्सा तो दो वर्षों से क्रमशः होती आई है। अब नम्बर लगा है, नजूमी—सयाने और आसेब झाड़ने वाले औलिया और फकीरों का।

दादी मरने से पहले परपोता देखने को तड़प रही है, माँ के पेट में पोते की चिन्ता से अन्न नहीं पचता, विधवा बुआ बेचारी के पैरों में भागते-भागते छाले पड़ गए हैं।

और खुद नायक-नायिका के चित्त में, जो अपने मनोभावों की झलक एक-दूसरे तक भी पहुँचाने में सकुचाते हैं, कैसी अद्‌भुत धुकधुकी उठ रही है ?

रामदेव अब भरकम हो गए हैं, जिम्मेदारी समझने लगे हैं, दूसरे के बच्चे को प्यार करने और निधड़क 'बेटा !' कहने के अभ्यस्त हो गए हैं।

और अपनी उस—हाँ उस !—उच्छृंखलता और जल्दबाजी पर न-जाने कितनी बार अपने-आपको कोसे दे चुके हैं !

८

वह बड़े पहुँचे हुए महात्मा हैं। उम्र उनकी डेढ़ सौ वर्ष से कम नहीं है लेकिन देखने में युवक-से लगते हैं। पूरे सौ वर्ष से हिमालय में तप रहे थे और स्वयं शिवजी के एक अमर गण उनके गुरु हैं। केवल कुछ दिनों के लिए भू-लोक में विचरण करने उतरे हैं। वह भी तब, जब कि स्वयं गुरुजी ने आज्ञा दी। उन्हें अपूर्व सिद्धि प्राप्त है। मरे को जिलाने का तो ईश्वर की ओर से निषेध है, बाकी सब काम करना उनके लिए पलभर का काम है। जो लाचार हैं, दुखी हैं, परेशान हैं, केवल उन्हीं की सहायता वे करते हैं।

एक महीने से यहाँ हैं। न-जाने कितनों का उद्धार किया है। बड़े आदमियों से बात नहीं करते, पैसे की तरफ आँख नहीं उठाते। जो गरीब है, उसके लिए उनके कपाट खुले हैं। अन्तर्यामी हैं। जिसने धन माँगा, उसे

धन दिया, जिसने रोजगार माँगा, उसे रोजगार और जिसने संतान माँगी, उसे सन्तान भी मिल गई।

सन्तान…क्या कहना है, उन महात्माजी का !

रामदेव, वही तुम्हारे सच्चे सहायक हैं। उनका यश तो तुमने सुना ही है। क्यों नहीं किस्मत आजमाई करते ? योग और सिद्धि आखिर कोई चीज हैं ! इस भारत-भूमि पर ही तो इनका जन्म हुआ। क्या जाने, इस कलिकाल में भी किसी को भूलोकवासियों पर दया आ गई हो।

उनकी कीर्ति सभी सुन चुके हैं, लेकिन रामदेव से कौन कहे ? क्या वह रात-भर बहू को छोड़ेगा ? दादी, बुआ, माँ, बहू और खुद रामदेव मन-ही-मन इस सवाल का जवाब ढूंढ़ने में व्यस्त हैं।

आखिर बहूजी एक दिन हिम्मत कर गई। रामदेव ने पहले तो झिड़क दिया, फिर टाला, लेकिन अब तो न-जाने कैसे माँ, बुआ, दादी, सभी को हठ करने की हिम्मत हो गई। क्या रामदेव इस संयुक्त आक्रमण को सहन कर सकते थे ?

थे तो कोई सिद्ध ही पुरुष; क्योंकि ठीक नौ महीने बाद रामदेव के घर पुत्र-जन्म हो गया। बड़ी खुशियाँ मनाई गई।

अब सब कोई सुखी हैं और सब कुछ ठीक है; सिर्फ लाला रंगीलाल ने उनके घर का पानी पीना छोड़ दिया है।

अन्धी दुनिया

१

आज फिर लड़ाई···? शकुन बुरे दिखायी देते हैं। काशीनाथ ठिठक गया। बीरो की माँ, मक्खन की भाभी, श्रीराम की बहू खिड़कियाँ खोले खड़ी थीं। बिस्सो, जग्गी, रमेश और परसादी धूल में सने, हाथों में खेल की चीजें लिए-लिए, थोड़ी देर को खेल बन्द कर, खेल से अधिक मनोरंजक घटना का अवलोकन कर रहे थे···!

काशीनाथ भय, क्षोभ, आशंका और अपमान से दग्ध होता हुआ, घर के सामने जा खड़ा हुआ। लड़के भाग गए, बीरो की माँ ने पल्ला नीचाकर लिया, मक्खन की भाभी ने खिड़की बन्द कर ली, श्रीराम की बहू लम्बा घूँघट काढ़कर पीछे हट गई।

जैसे हठात् पट-परिवर्तन हो गया!

भीतर घर में माँ के कर्कश कंठ का घोर निनाद गूंज रहा था। 'हाय! इस डायन ने मेरा सत्यानाश कर दिया! लौंडा मेरा अलग हाथ से निकल गया, ब्याह किया, तो घर का सब-कुछ उसमें स्वाहा हो गया! अब यह हरामजादी डायन मुझे जला-जलाकर क्यों मार डालना चाहती है। अरे, इस तरह जला-जलाकर क्यों मारती है, एक दिन खसम से संखिया मँगाकर खिला क्यों नहीं देती? झगड़ा साफ हो जाय, तेरी जान का वबाल कटे।'

चिर-अभ्यस्त 'हाय! हाय!' और धमाधम छाती पीटने की ध्वनि! साथ ही कोमल कण्ठ से निकली हुई अव्यक्त रुदन-ध्वनि और मूक-व्यथा!

स्तब्ध हो, काशीनाथ गली के फर्श पर नजर गाड़कर खड़ा रह गया। जिस भयानक ज्वाला से उसका अंतस्तल धक्-धक् कर रहा था, उसे कौन जाने ?

अब करे क्या ?

वहाँ खड़े-खड़े उसने रौद्र-रस का एक चटखारा और लिया, और पत्थर को तोड़नेवाले माँ के भयानक वाक्य-वाणों को अधूरा ही सुन, धीरे-धीरे वापस चल दिया।

हाय ! लाड़ों में पली, एक वर्ष की ब्याही उस सुकुमारी की क्या दशा होगी !

२

जब तक ब्याह न हुआ था, माँ के पेट में पानी न पचता था। जरा बुखार आता तो गिड़गिड़ाकर हाथ जोड़ती, और कहती—'अरे मेरे लाल। मैं तो सूखा पेड़ हूँ; अब चली, तब चली ! देख, मैं तो मर ही जाऊँगी, पर तू···तुझे रोटी के भी लाले पड़ जायँगे। देख, मान जा, हाथ जोड़ती हूँ, ब्याह कर ले। लाला रामप्रसाद की लड़की पढ़ी-लिखी है; परी-सी सुन्दर है, देख ले, समझ ले। देख, मेरे जीते-जी···!' इत्यादि। कहीं जाना होता, तो कहती—'देख, कैसी तकलीफ है। बहू घर में हो, तो एक जनी बैठी तो नजर पड़े ! मान जा, समझ जा !' कभी किसी की बहू को देखती, किसी बच्चे को देखती, तो बेटे के आगे, आँखों में आँसू भर लाती, और ठण्डी साँस लेकर कहती—'हाय बेटा ! क्या मुझसे ऐसी दुश्मनी है ! क्या मेरे दिल की दिल में ही रहेगी ?' बहुधा यह भी कहती—'मेरी उमर तो बेटा, अब इस काबिल नहीं है कि मैं घर के धंधों में बखत बिताऊँ। मेरा यह समय तो रामनाम जपने, धर्म-ध्यान करने, और दर्शन मेले में बीतना चाहिए। मेरे बेटा, जल्दी से तेरा ब्याह हो जाय, तो मैं इस जंजाल से छुट्टी लूँ।'

काशीनाथ पच्चीस वर्ष का था, एफ० ए० तक पढ़ा था, रेलवे में नौकर था, और माँ की प्रकृति से परिचित था। वह उसके जीते-जी विवाह न करना चाहता था। स्वभाव का बहुत शांत, स्तब्ध और सहनशील था।

माँ की अनुनय, विनय और प्रार्थना के उत्तर में वह केवल चुप रह जाता, या धीरे-से हँस देता और काम में लग जाता।

तीस वर्ष की उम्र में यह बेटा पैदा हुआ था, और चालीस वर्ष की उम्र में विधवा हो गई थी। अब माँ की उम्र पचपन वर्ष की है। बेटे के प्रति-जैसा स्निग्ध-प्रेम उसके हृदय के एक कोने में विद्यमान है, दूसरे कोने में जगत् के प्रति वैसी ही क्रूरता, पशुता और भयानकता भरी हुई है।

काशीनाथ सब समझता था, और ब्याह के बाद के भयानक दृश्य देखता था। चुप रहता था, ब्याह न करता था और हँसी-खुशी माँ की सेवा करता था।

पर, एक बार, जब माँ के बचने की आशा न रही, तो मजबूर होकर उसे झटपट ब्याह करना ही पड़ा।

कहना न होगा कि उम्मीद न रहने पर भी माँ मरी नहीं; गरीब काशीनाथ का भविष्य गंदा करने के लिए बच गई।

३

बहू आई, तो माँ की सारी बीमारी काफूर हो चुकी थी। काँखते-कूँखते प्यार से घर में लाई, रस्में भुगताईं, प्यार की बातें की, गोद में लिटाया, मुँह चूमा, और पुराने वक्तों की अपनी परम-प्रिय सोने की सिकड़ी मुँह-दिखाई में दी।

अबोध बहू ने सास के हृदय में अतुलनीय स्नेह देखा, और वह झट-झट अपनी माँ को भूलने लगी।

पर द्विरागमन के बाद जब आई, तो स्पष्ट नीलाकाश में धूमकेतु का आभास मिलने लगा। स्नेह पुराना पड़ रहा था। उत्तरदायित्व के भयानक परिश्रम का गट्ठर सामने ला रखा गया था, शासन-दण्ड अथवा सास-दण्ड हाथ में सम्हाल लिया गया था और बड़प्पन के रौब और गम्भीरता के के भार ने मिलकर सूरत में, स्वर में चेष्टा में भयानक परिवर्तन उपस्थिति कर दिया था।

काशीनाथ ने यह परिवर्तन देखा तो काँप उठा। रोज रात को घण्टों

पत्नी को तोते की तरह पढ़ाने लगा। 'लक्ष्मी-बहू', 'सास-बहू' 'आदर्श-बहू' ––और न जाने क्या-क्या—ढेर-की-ढेर पुस्तकें ला पटकीं, रोज सुबह उठते ही सास के पैर छूकर प्रणाम करने की आदत डाल दी, सास को खिलाकर खुद खाने का कठोर नियंत्रण कर दिया। रात को एक घण्टा सास के पैर दबाना अनिवार्य कर दिया।

और उस सुशीला, सुकुमारी नव-वधू ने सिर झुकाकर खुशी-खुशी यह सब-कुछ स्वीकार कर लिया।

बहू का 'लक्ष्मी-पन,' 'देवी-पन' और 'सरस्वती-पन' और 'मेरी लाडो !' 'मेरी बच्ची !', 'मेरी बावली !'—संबोधन, तो द्विरागमन में आने तक ही खत्म हो चुके थे। अब हठात् उसमें नये-नये दोषों के अन्वेषण की गुंजाइश हो गई।

बहू जिद्दिन है। मेरे पैर दबाती है—खसम को खुश करने के लिए, मना करती हूँ, तो हटती नहीं।

बहू मुझे देख नहीं सकती। मुझे जलाने के लिए खाना कम खाती है और सूख-सूखकर खसम को मेरे खिलाफ उभाड़ना चाहती है।

बहू के चरित्र में भी कुछ दोष मालूम पड़ता है। हमेशा बाप के घर जाने के लिए जिद करती है। कोई बाप के घर का आया कि उसके साथ चलने की इच्छा करने लगी।

बहू मुझसे जलती है। मुझसे बात करना पसन्द नहीं करती। दिन-भर वाहियात किताबें पढ़ा करती है। जरा मैं सुनाने को कहती हूँ, तो इतनी जल्दी-जल्दी सुनाने लगती है कि कुछ समझ में नहीं आता। धीरे पढ़ने को कहती हूँ, एकदम इतना धीरे पढ़ने लगती है कि जी ऊब जाय।

बहू मुझे पंगु, तिरस्कृता, काग-उड़ानी, आश्रिता बनाकर रखना चाहती है। घर के काम में हाथ नहीं लगाने देती।

इन दोषों की खोज लगाकर सास अक्सर बीरो की माँ से, मक्खन की भाभी से, तुझसे, मुझसे विचार-विनिमय करने लगी। और इस परामर्श के फलस्वरूप, अपना अस्तित्व कायम रखने और अन्य बहुओं और सासों के सामने एक उदाहरण या नजीर पेश करने के लिए बहू पर दमन करना स्थिर हुआ।

४

काशीनाथ सब सहता है। आँखों में आँसू भरे रहता है, और महीने में पन्द्रह दिन, दिन में एक वक्त और कभी-कभी दोनों वक्त बेचारे को रोटी नसीब नहीं होती। चेहरा उसका पीला हो गया है और पत्नी बेचारी सूख-कर सींक-सी रह गई है। सारा आनन्द, सारा उत्साह, सारा सुख नष्ट हो गया है और दिन में, न-जाने कितनी बार पत्नी के या माँ के या अपने मर जाने की कामना किया करता है।

दुनिया देखती है, पर बोलती नहीं। 'मामूली बात है', 'घर-घर मिट्टी के चूल्हे हैं', 'जहाँ चार वर्तन जुड़ते हैं, खड़कते ही हैं'—इत्यादि उक्तियों-द्वारा दुनिया के लोग इस भयानक गृह-कलह के प्रति सामान्य भाव से उपेक्षा प्रकट कर, अपने-अपने कामों में लग जाते हैं।

पर, भावुक, गम्भीर, मन-ही-मन जलने वाले अभागे काशीनाथ के हृदय का हाल पढ़ने की किसे फुर्सत है ?

एक दिन अकस्मात् सुना गया—काशीनाथ ने माँ को अलग कर दिया !

दुनिया के लोगों की नींद इस सनसनीदार घटना से टूटी, और अनु-सन्धान किया गया, तो पता लगा—आधी रात में बहू को लेकर काशीनाथ तन-तनहा जुदा हो गया है। माँ रात को जागी, तो बेटे-बहू दोनों गायब !

अब माँ की हालत कोई देखता रोती, चीखती, चिल्लाती गली-भर में आई और हरेक परिचित को अपनी दुःख-गाथा सुना आई।

तीन दिन तक बेटे-बहू का पता न लगा। चौथे दिन एक आदमी बारह रुपये लिए आया और माँ से बोला—'काशीनाथ ने दिये हैं।'

'कैसे ?'

मालूम हुआ, महीने का खर्च। हर महीने मिला करेगा।

५

पता उस आदमी से लग ही गया। दूर के एक मुहल्ले में छः रुपये मासिक का मकान लिया है, खाट-बिछौने, बर्तन-भाँडे नये खरीदे हैं और अब माँ की सूरत देखने का इच्छुक नहीं है।

तब माँ के रुदन का परिवर्द्धित कंठ-स्वर लोगों के कान में पड़ा और क्रोध से फुंकारता हुआ, कुछ वयोवृद्ध और गण्य-मान्य सज्जनों का दल एक जगह इकट्ठा हुआ। काशीनाथ को बुलाया गया। पञ्चायत का छोटा-मोटा संस्करण हुआ।

काशीनाथ आया, और साथ ही लोगों का रौब और उनकी ऐंठ छुचन्द हो गये।

'देखो काशीनाथ'—एक वृद्ध ने यथा-साध्य नम्र होकर कहा—'तुम पढ़े-लिखे समझदार हो। जो नासमझ और मूर्ख हैं, वे अगर बहू के कहे में आकर माँ का तिरस्कार करें तो क्षम्य है···'

काशीनाथ ने चिढ़कर बीच में कहा—'तो आप मुझे सबसे ज्यादा नासमझ और मूर्ख समझकर क्षमा कीजिए।'

तब, सुरमई आँखोंवाले, मोटे-ताजे चन्दूलाल ने कहा—'अरे बेहया! तुझे शर्म नहीं आती? चल्लू-भर पानी में डूब नहीं मरता? जिसने तुझे पाला, परवरिश की, खुद गीले में सोकर तुझे सूखे में सुलाया; खुद तकलीफ सहकर तुझे आराम पहुँचाया—उसे, तू इस तरह, काम निकल जाने पर छोड़कर अलग हो गया···'

क्षोभ और अपमान से काशीनाथ का सिर नीचा हो गया; मुँह से एक शब्द न निकल सका।

अब एक और सज्जन बोले—'वाह री दुनियाँ! ब्याह करते ही पर निकल आए! अरे, तुझे कुछ तो शर्म आनी चाहिए थी? लुगाई हरामजादी में ऐसे लाल लग गए कि जरा नहीं दबाई जा सकती! क्यों? लानत है, ऐसी मर्दुमी पर। देख, हमारा भतीजा रामचन्द है, उसकी बहू ने कहा—'अलग हो जायँ!' तो बोला—'अपने बच्चे को लेकर तू अलग हो जा, मेरी माँ का बच्चा उसके साथ रहेगा।' समझा? यह है असली मर्दों की बात! क्या तेरे हाथ में दम नहीं, जो औरत नहीं दबती?'

स्तब्ध और सहनशील काशीनाथ क्रोध से अधीर हो उठा। क्षुब्ध स्वर में बोला—'हमारे घर की लड़ाई···'

'अरे, यह तो मामूली बात है, जहाँ दो बर्तन होंगे खड़केंगे ही!'

'···माँ का स्वभाव···'

'यही तो आजकल के नौजवानों की भूल है। अरे, कहीं एक हाथ ताली बजती है ?'

काशीनाथ जानता है कि सचमुच एक ही हाथ ताली बजी थी। पर समझाये कैसे ?

बोला—'देखिए साहब, मैंने सारा जेवर-रुपया, कपड़ा-लत्ता छोड़ दिया, घर भी छोड़ दिया, और उसके खर्च के लिए जो कुछ बनता है, देता हूँ—आप लोग मुझे माफ करें। मैं पास उसे रख नहीं सकता! हमारा निर्वाह अब हो नहीं सकता···!'

कई सज्जन एक-साथ गरज उठे—'अरे पापिष्ठ! यह क्या तूने दाल-भात का कौर समझा है ? अरे, सब तो उस बेचारी ने तेरी पढ़ाई-लिखाई ब्याह-शादी में खर्च कर दिया, अब उसके पास बचा क्या है! अरे नीच, उस बेचारी विधवा को यों धोखा देकर क्या तू आसानी से बच जायेगा ? याद रख, अब हम लोग मर नहीं गये हैं।'

उस पहले वाले वयोवृद्ध सज्जन ने नर्म होकर कहा—'देखो बेटा, तुम्हारा यह काम अच्छा नहीं हुआ। तुम्हारी माँ को हमने समझा दिया है। जरा दोनों को समझाते रहो। वह बहू भी अभी कच्ची है। बुढ़िया अगर तुम लोगों को कुछ तकलीफ देती है तो आराम भी देती ही है। अब की बार तो हमारा कहना मानकर उसे रख लो। देखो, तुम बड़े समझदार···।'

काशीनाथ को आत्म-समर्पण करना ही पड़ा।

६

माँ फिर आ गई है। सारे क्षोभ, अपमान, लांछना को पीकर काशीनाथ उसे ले आया है। ले तो आया है, पर दुनिया के लोगों के प्रति उसका मन भयानक घृणा से भर रहा है। जब माँ को लेने गया था, तो उनमें से कई आदमी उसे मिले, जिन्होंने पंचायत में जी जी चाहा, बका था। उन्होंने अब हँसकर बोलना चाहा। काशीनाथ ने झिड़क दिया और माँ को लेकर सीधा घर आ गया।

इस थोड़े-से समय ने और दुनियाँ के अन्धेपन ने काशीनाथ को कुछ-का-कुछ बना दिया है। अब वह जीते-जी माँ को न छोड़ेगा, पर बरदाश्त भी न करेगा, खुल्लमखुल्ला पत्नी का पक्ष भी लेगा और समय आने पर माँ की खबर भी···।

माँ इस परिवर्तन की बात नहीं जानती। वह तो गर्व और अभिमान से फूल रही है। आखिर जीत उसी की रही। दबना कैसा, अब तो वह खूब दमन करेगी, खूब दबायेगी और खूब शान से शासन करेगी।

काशीनाथ दुनिया के अन्धेपन से लाभ उठाने का प्रण कर चुका है। और मन-ही-मन एक वीभत्स संकल्प भी कर चुका है। न सहेगा, न चुप रहेगा, न रोटी छोड़ेगा और···लड़ाई न होगी, तो छेड़कर लड़ाई करेगा।

छेड़कर···करने की नौबत न आई। उस दिन बात-बे-बात की लड़ाई शुरू हो गई। वही किताब पढ़ने का मामला। बहू मन-ही-मन पढ़ रही थी। सुनाने का प्रस्ताव हुआ। पहले जल्दी-जल्दी पढ़ने की शिकायत हुई, फिर समझा-समझाकर पढ़ने की आज्ञा हुई, फिर बेहद धीरे-धीरे पढ़ने का अभियोग लगा।

और इस अभियोग के साथ-ही-साथ सास महाशया ने क्रोध से बिल-बिलाकर दाँत पीसकर, आँख काढ़कर बहू का सिर दीवार से टकरा दिया!!

सिर फूट गया और रक्त बहने लगा।

शाम को बेटा लौटा, तो माँ सिर पीट-पीटकर कहने लगी—'क्या इसीलिए मुझे बुलाकर लाया था? इसीलिए—जला-जलाकर मारने? देख, तेरी बेगम ने यह क्या किया है? जरा-सी बात पर सिर फोड़ लिया। अरे, बाबा रे, यह छलछन्दिन तो मुझे किसी दिन फाँसी पर लटकवा देगी। वाह, बेटा, वाह! अच्छी मेरी खातिरदारी की!!'

माँ भयानक मुँह बनाकर सिर हिलाने लगी।

ऊपर जाकर उसने बहू से पूछा। रोते-रोते सच-सच सब बता दिया गया और जख्म और खून भी दिखा दिया गया।

तब बेटे ने शान्त भाव से कोट उतारकर खूँटी पर टाँगा, दायें हाथ से कोने में रखा हुआ मजबूत बेंत उठाकर बाईं हथेली पर दो-तीन बार

पटका और धीरे-धीरे नीचे आकर भीतर से किवाड़ बन्द कर लिये।

बेटे की उग्र मूर्ति देखकर माँ चीख पड़ी···।

वह चीख जबर्दस्ती दबा दी गई और हाथ थक जाने तक काशीनाथ का पशुत्व-भाव अनर्थ करता रहा।

एक सप्ताह तक माँ घर से न निकली, निकलने ही न दी गई। जब मार के चिन्ह मिट गये तो स्वतन्त्रता मिली।

छूटते ही पहुँची मुरब्बियों के पास और रोई जाकर दुखड़ा। खूब हाय-तोबा मचाई, धरना दिया और हाथ जोड़-जोड़कर विनती की।

एक सप्ताह तक रोज सुबह जाती, शाम को आती; पर कुछ फल न हुआ। न पंचायत जुड़ी, न काशीनाथ से जवाब तलब किया गया।

'अन्धी दुनिया' ने वही 'बर्तन खड़कनेवाली' बात कहकर माँ का अभियोग ढिसमिस कर दिया!!

